अनेकान्त

भाद्रपद, संवत् २००५ :: सितम्बर, सन् १९४८

वर्ष ९

किरण ९

विधिका विधान

१

जीवनकी औ' धनकी,
आशा जिनके सदा लगी रहती।
विधिका विधान सारा,
उनहीके अर्थ होता है॥

२

विधि क्या कर सकता है,
उनका जिनकी निराशता आशा?
भय-काम-वश न होकर,
जगमें स्वाधीन रहते जो॥

'युगवीर'

★

प्रधान सम्पादक
जुगलकिशोर मुख्तार

सह सम्पादक
मुनि कान्तिसागर
दरबारीलाल न्यायाचार्य
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
डालमियानगर (विहार)

★

★

सञ्चालक-व्यवस्थापक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

संस्थापक-प्रवर्तक
वीरसेवामन्दिर, सरसावा

★

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9643

भारतके प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू

तेरी वर्षगाँठ पर गाँठें
लगें और गाँठें खुल जायें

बन्ध - मोक्षके सम्मिश्रणसे
जीवन-तन्तु नया बल पायें

१४ नवम्बरको आपकी देश-विदेशमें सर्वत्र ६०वीं वर्षगाँठ मनाई गई

विषय-सूची

	नाम लेख	पृष्ठ
१	कामना (कविता)—['युगवीर'	३२७
२	मेरी द्रव्यपूजा (कविता)—[जुगलकिशोर मुख्तार	३२८
३	समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)—[सम्पादक	३२९
४	मूर्तिकला—[श्रीलोकपाल	३३३
५	जैन-अध्यात्म—[पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	३३५
६	तीन चीत्र—[जमनालाल जैन	३४१
७	हिन्दीके दो नवीन महाकाव्य—[मुनि कान्तिसागर	३४३
८	मथुरा-संग्रहालयकी महत्वपूर्ण जैन-पुरातत्त्व सामग्री—[बालचन्द एम० ए०	३४५
९	समाज-सेवकोंके पत्र—[ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद	३५१
१०	व्यक्तित्व (स्मृतिकी रेखाएँ)—[गोयलीय	३५५
११	साहित्य-परिचय और समालोचन	३५८
१२	श्रद्धाञ्जलि (कविता)—[श्रीव्रजलाल उर्फ भैयालाल जैन	३६२
१३	सम्पादकीय—[मुनि कान्तिसागर	३६३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

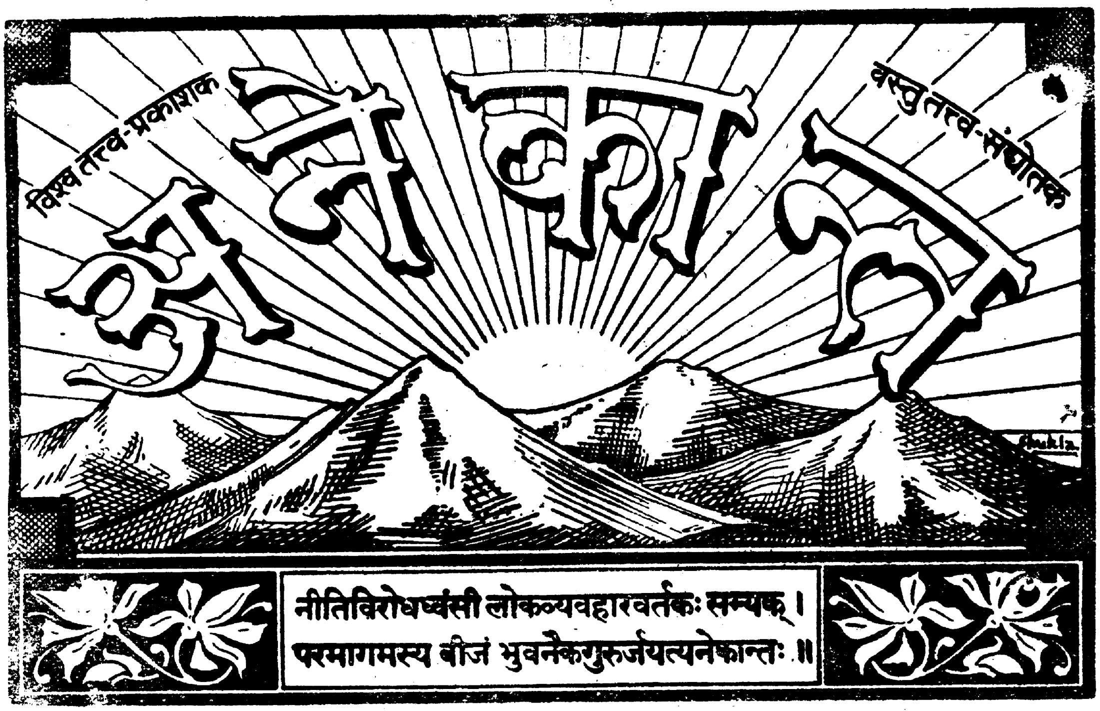

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरणका मूल्य ।)

वर्ष ९	वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जिला सहारनपुर	सितम्बर
किरण ९	भाद्रपदशुक्ल, वीरनिर्वाण-संवत २४७४, विक्रम-संवत् २००५	१९४८

कामना

परमागमका बीज जो, जैनागमका प्राण ।
'अनेकान्त' सत्सूर्य सो, करो जगत्-कल्याण ॥१॥
'अनेकान्त'-रवि-किरणसे, तम-अज्ञान-विनाश ।
मिट मिथ्यात्व-कुरीति सब, हो सद्धर्म-प्रकाश ॥२॥
कुनय-कदाग्रह ना रहे, रहे न मिथ्याचार ।
तेज देख भागें सभी, दम्भी-शठ-बटमार ॥३॥
सूख जायं दुर्गुण सकल, पोषण मिले अपार ।
सद्भावोंको लोकमें, हो विकसित संसार ॥४॥
शोधन-मथन विरोधका, हुआ करे अविराम ।
प्रेम-पगे रल-मिल सभी, करें कर्म निष्काम ॥५॥

युगवीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरी द्रव्यपूजा

कृमि-कुल-कलित नीर है, जिसमें मच्छ-कच्छ-मेंडक फिरते,
हैं मरते औ' वहीं जनमते, प्रभो ! मलादिक भी करते ।
दूध निकालें लोग छुड़ाकर बच्चेको पीते पीते,
है उच्छिष्ट-अनीतिलब्ध, यों योग्य तुम्हारे नहिं दीखें ॥ १ ॥
दही-घृतादिक भी वैसे हैं कारण उनका दूध यथा;
फूलोंको भ्रमरादिक सूँघें, वे भी हैं उच्छिष्ट तथा ।
दीपक तो पतङ्ग-कालाऽनल जलते जिनपर कीट सदा;
त्रिभुवनसूर्य ! आपको अथवा दीप-दिखाना नहीं भला ॥ २ ॥
फल-मिष्टान्न अनेक यहाँ, पर उनमें ऐसा एक नहीं,
मल-प्रिया मक्खीने जिसको आकर, प्रभुवर ! छुआ नहीं ।
यों अपवित्र पदार्थ, अरुचिकर, तू पवित्र सब गुणघेरा;
किस विधि पूजूँ ? क्या हि चढ़ाऊँ ? चित्त डोलता है मेरा ॥ ३ ॥
औ' आता है ध्यान, 'तुम्हारे क्षुधा-तृषाका लेश नहीं,
नाना रस-युत अन्न-पानका, अतः प्रयोजन रहा नहीं ।
नहिं वाँछा, न विनोद-भाव, नहिं राग-अंशका पता कहीं,
इससे व्यर्थ चढ़ाना होगा, औषध-सम, जब रोग नहीं' ॥ ४ ॥
यदि तुम कहो 'रत्न-वस्त्रादिक-भूषण क्यों न चढ़ाते हो,
अन्यसदृश, पावन हैं, अर्पण करते क्यों सकुचाते हो' ।
तो तुमने निःसार समझ जब खुशी खुशी उनको त्यागा,
हो वैराग्य-लीन-मति, स्वामिन् ! इच्छाका तोड़ा तागा ॥ ५ ॥
तब क्या तुम्हें चढ़ाऊँ वे ही, करूँ प्रार्थना 'ग्रहण करो' ?
होगी यह तो प्रकट अज्ञता तव-स्वरूपकी, सोच करो ।
मुझे धृष्टता दीखे अपनी और अश्रद्धा बहुत बड़ी,
हेय तथा संत्यक्त वस्तु यदि तुम्हें चढ़ाऊँ घड़ी-घड़ी ॥ ६ ॥
इससे 'युगल' हस्त मस्तकपर रखकर नम्रीभूत हुआ,
भक्ति-सहित मैं प्रणमूँ तुमको, बारबार, गुण-लीन हुआ ।
संस्तुति शक्ति-समान करूँ औ' सावधान हो नित तेरी;
काय-वचनकी यह परिणति ही अहो ! द्रव्यपूजा मेरी ॥ ७ ॥
भाव-भरी इस पूजासे ही होगा आराधन तेरा,
होगा तव-सामीप्य प्राप्त औ' सभी मिटेगा जग-फेरा ॥
तुझमें मुझमें भेद रहेगा नहिं स्वरूपसे तब कोई,
ज्ञानानन्द-कला प्रकटेगी, थी अनादिसे जो खोई ॥ ८ ॥

वीरसेवामन्दिर, सरसावा

जुगलकिशोर मुख़्तार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने

युक्त्यनुशासन

नाना-सदेकात्म-समाश्रयं चेद्-
अन्यत्वमद्विष्ठमनात्मनोः क्व ।
विकल्प-शून्यत्वमवस्तुनश्चेत्-
तस्मिन्नमेये क्व खलु प्रमाणम् ॥५५॥

'नाना सतों—सत्पदार्थोंका—विविध द्रव्य-गुण-कर्मोंका—एक आत्मा—एक स्वभावरूप व्यक्तित्व; जैसे सदात्मा, द्रव्यात्मा, गुणात्मा अथवा कर्मात्मा—ही जिसका समाश्रय है ऐसा सामान्य यदि (सामान्य वादियोंके द्वारा) माना जाय और उसे ही प्रमाणका विषय बतलाया जाय अर्थात् यह कहा जाय कि सत्ता-सामान्यका समाश्रय एक सदात्मा, द्रव्यत्वसामान्यकी समाश्रय एक द्रव्यात्मा, गुणत्वसामान्यका समाश्रय एक गुणात्मा अथवा कमत्व सामान्यका समाश्रय एक कर्मात्मा जो अपनी एक सद्व्यक्ति, द्रव्य-व्यक्ति, गुणव्यक्ति अथवा कर्मव्यक्तिके प्रतिभास-कालमें प्रमाणसे प्रतीत होता है वही उससे भिन्न द्वितीयादि व्यक्तियोंके प्रतिभास-कालमें भी अभि-व्यक्तताको प्राप्त होता है और जिससे उसके एक सत् अथवा द्रव्यादिस्वभावकी प्रतीति होती है, इतने मात्र आश्रयरूप सामान्यके ग्रहणका निमित्त मौजूद है अतः वह प्रमाण है, उसके अप्रमाणता नहीं है, क्योंकि अप्रमाणता अनन्तस्वभावके समाश्रयरूप सामान्यके घटित होती है, तो ऐसी मान्यतावाले सामान्यवादियोंसे यह प्रश्न होता है कि उनका वह सामान्य अपने व्यक्तियोंसे अन्य (भिन्न) है या अनन्य (अभिन्न)? यदि वह एक स्वभावके आश्रय-रूप सामान्य अपने व्यक्तियोंसे सर्वथा अन्य (भिन्न) है तो उन व्यक्तियोंके प्रागभावकी तरह असदात्म-कत्व, अद्रव्यत्व, अगुणत्व अथवा अकर्मत्वका प्रसंग आएगा और व्यक्तियोंके असदात्मकत्व, अद्रव्यत्व, अगुणत्व अथवा अकर्मत्व-रूप होनेपर सत्सामान्य, द्रव्यत्वसामान्य, गुणत्वसामान्य अथवा कर्मत्वसामान्य भी व्यक्तित्वविहीन होनेसे अभाव-मात्रकी तरह असत् ठहरेगा, और इस तरह व्यक्ति तथा सामान्य दोनोंके ही अनात्मा—अस्तित्वविहीन—होनेपर वह अन्यत्वगुण किसमें रहेगा जिसे अद्विष्ठ—एकमें रहने वाला—माना गया है? किसीमें भी उनका रहना नहीं बन सकता और इसलिए अपने व्यक्तियोंसे सर्वथा अन्यरूप सामान्य व्यवस्थित नहीं होता।'

'यदि वह सामान्य व्यक्तियोंसे सर्वथा अनन्य (अभिन्न) है तो वह अनन्यत्व भी व्यवस्थित नहीं होता; क्योंकि सामान्यके व्यक्तिमें प्रवेश कर जानेपर व्यक्ति ही रह जाती है—सामान्यकी कोई अलग सत्ता नहीं रहती और सामान्यके अभावमें उस व्यक्तिकी संभावना नहीं बनती इसलिए वह अनात्मा ठहरती है, व्यक्तिका अनात्मत्व (अनस्तित्व) होनेपर सामान्यके भी अनात्मत्वका प्रसंग आता है और इस तरह व्यक्ति तथा सामान्य दोनों ही अनात्मा (अस्तित्व-विहीन) ठहरते हैं; तब अनन्यत्व-गुणकी योजना किसमें की जाय, जिसे द्विष्ठ (दोनोंमें रहने वाला) माना गया है? किसीमें भी उसकी योजना नहीं बन सकती। और इसके द्वारा सर्वथा अन्य-अनन्य-रूप उभय-एकान्तका भी निरसन हो जाता है; क्योंकि उसकी मान्यतापर दोनों प्रकारके दोषोंका प्रसंग आता है।'

'यदि सामान्यको (वस्तुभूत न मान कर) अवस्तु (अन्याऽपोहरूप) ही इष्ट किया जाय और उसे विकल्पोंसे शून्य माना जाय—यह कहा जाय कि उसमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खरविषाणकी तरह अन्यत्व-अनन्यत्वादिके विकल्प ही नहीं बनते और इसलिए विकल्प उठाकर जो दोष दिये गये हैं उनके लिए अवकाश नहीं रहता —तो उस अवस्तुरूप सामान्यके अमेय होनेपर प्रमाणकी प्रवृत्ति कहाँ होती है ? अमेय होनेसे वह सामान्य प्रत्यक्षादि किसी भी प्रमाणका विषय नहीं रहता और इसलिए उसकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती ।'

(इस तरह दूसरोंके यहाँ प्रमाणाभावके कारण किसी भी सामान्यकी व्यवस्था नहीं बन सकती ।)

व्यावृत्ति-हीनाऽन्वयतो न सिद्धयेद्
विपर्ययेऽप्यद्वितयेऽपि साध्यम् ।
अतद्व्युदासाऽभिनिवेश-वादः
पराभ्युपेताऽर्थ-विरोध-वादः ॥५६॥

'यदि साध्यको—सत्तारूपपर सामान्य अथवा द्रव्यत्वादिरूप अपर सामान्यको—व्यावृत्तिहीन अन्वय से—असत्की अथवा अद्रव्यत्वादिकी व्यावृत्ति (जुदायगी)के बिना केवल सत्तादिरूप अन्वय हेतुसे—सिद्ध माना जाय तो वह सिद्ध नहीं होता—क्योंकि विपक्षको व्यावृत्तिके विना सत्-असत् अथवा द्रव्यत्व-अद्रव्यत्वादिरूप साधनोंके संकरसे सिद्धिका प्रसंग आता है और यह कहना नहीं बन सकता कि जो सदादिरूप अनुवृत्ति (अन्वय) है वही असदादिकी व्यावृत्ति है; क्योंकि अनुवृत्ति (अन्वय) भाव-स्वभावरूप और व्यावृत्ति अभाव-स्वभावरूप है और दोनोंमें भेद माना गया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सदादिके अन्वय पर असदादिककी व्यावृत्ति सामर्थ्यसे ही हो जाती है; क्योंकि तब यह कहना नहीं बनता कि व्यावृत्तिहीन अन्वयसे उस साध्यकी सिद्धि होती है, सामर्थ्यसे असदादिककी व्यावृत्तिको सिद्ध माननेपर तो यही कहना होगा कि वह अन्वयरूप हेतु असदादिकी व्यावृत्तिसहित है, उसीसे सत्सामान्यकी अथवा द्रव्यत्वादि सामान्यकी सिद्धि होती है। और इसीलिए उस सामान्यके सामान्य विशेषाख्यत्वकी व्यवस्थापना होती है।'

'यदि इसके विपरीत अन्वयहीन व्यावृत्तिसे साध्य जो सामान्य उसको सिद्ध माना जाय तो वह भी नहीं बनता—क्योंकि सवथा अन्वयरहित अतद्व्यावृत्ति-प्रत्ययसे अन्यापोहकी सिद्धि होनेपर भी उसकी विधिकी असिद्धि होनेसे—उस अर्थक्रियारूप साध्यकी सिद्धिके अभावसे—उसमें प्रवृत्तिका विरोध होता है—वह नहीं बनती। और यह कहना भी नहीं बनता कि दृश्य और विकल्प्य दोनोंके एकत्वाऽध्यवसायसे प्रवृत्तिके होनेपर साध्यकी सिद्धि होती है; क्योंकि दृश्य और विकल्प्यका एकत्वाध्यवसाय असम्भव है। दर्शन उस एकत्वका अध्यवसाय नहीं करता; क्योंकि विकल्प्य उसका विषय नहीं है। दर्शनकी पीठपर होनेवाला विकल्प भी उस एकत्वका अध्यवसाय नहीं करता; क्योंकि दृश्य विकल्पका विषय नहीं है और दोनोंको विषय करनेवाला कोई ज्ञानान्तर सम्भव नहीं है, जिससे एकत्वाध्यवसाय हो सके और एकत्वाध्यवसायके कारण अन्वयहीन व्यावृत्तिमात्रसे अन्यापोहरूप सामान्यकी सिद्धि बन सके। इस तरह स्वलक्षणरूप साध्यकी सिद्धि नहीं बनती।'

'यदि यह कहा जाय कि अन्वय और व्यावृत्ति दोनोंसे हीन जो अद्वितयरूप हेतु है उससे सन्मात्रका प्रतिभास न होनेसे सत्ताद्वैतरूप सामान्यकी सिद्धि होती है, तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि सर्वथा अद्वितयकी मान्यतापर साध्य-साधनकी भेदसिद्धि नहीं बनती और भेदकी सिद्धि न होनेपर साधनसे साध्यकी सिद्धि नहीं बनती और साधनसे साध्यका सिद्धिके न होनेपर अद्वितय-हेतु विरुद्ध पड़ता है।'

'यदि अद्वितयको संवित्तिमात्रके रूपमें मानकर असाधनव्यावृत्तिसे साधनको और असाध्यव्यावृत्तिसे साध्यको अतद्व्युदासाभिनिवेशवादके रूपमें आश्रित किया जाय तब भी (बौद्धोंके मतमें) पराभ्युपेतार्थके विरोधवादका प्रसङ्ग आता है; अर्थात् बौद्धोंके द्वारा संवेदनाद्वैतरूप जो अर्थ पराभ्युपगत है वह अतद्व्युदासाभिनिवेशवादसे—अतद्व्यावृत्तिमात्र आग्रहवचनरूपसे—विरुद्ध पड़ता है; क्योंकि किसी असाधन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा असाध्यके अर्थाभावमें उनकी अव्यावृत्तिसे साध्य-साधन-व्यवहारकी उपपत्ति नहीं बनती और उनको अर्थ माननेपर प्रतिक्षेपका योग्यपना न होनेसे द्वैतकी सिद्धि होती है। इस तरह बौद्धोंके पूर्वाभ्युपेत अर्थके विरोधवादका प्रसङ्ग आता है।'

अनात्मनाऽनात्मगतेरयुक्ति-
र्वस्तुन्ययुक्तेर्यदि पक्ष-सिद्धिः ।
अवस्त्वयुक्तेः प्रतिपक्ष-सिद्धिः
न च स्वयं साधन-रिक्त-सिद्धिः ॥५७॥

'(यदि बौद्धोंके द्वारा यह कहा जाय कि वे साधनको अनात्मक मानते हैं, वास्तविक नहीं और साध्य भी वास्तविक नहीं है, क्योंकि वह संवृतिके द्वारा कल्पिताकाररूप है, अतः पराभ्युपेतार्थके विरोधवादका प्रसङ्ग नहीं आता है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि) अनात्मा—निःस्वभाव संवृतिरूप तथा असाधनकी व्यावृत्तिमात्ररूप—साधनके द्वारा उसी प्रकारके अनात्मसाध्यकी जो गति–प्रतिपत्ति (जानकारी) है उसकी सर्वथा अयुक्ति–अयोजना है—वह बनती ही नहीं।'

'यदि (संवेदनाद्वैतरूप) वस्तुमें अनात्मसाधनके द्वारा अनात्मसाध्यकी गतिकी अयुक्तिसे पक्षकी सिद्धि मानी जाय—अर्थात् संवेदनाद्वैतवादियोंके द्वारा यह कहा जाय कि साध्य-साधनभावसे शून्य संवेदनमात्रके पक्षपनेसे ही हमारे यहाँ तत्त्वसिद्धि है, तो (विकल्पिताकार) अवस्तुमें साधन-साध्यकी अयुक्तिसे प्रतिपक्षकी—द्वैतकी—भी सिद्धि ठहरती है। अवस्तुरूप साधन अद्वैततत्त्वरूप साध्यको सिद्ध नहीं करता है; क्योंकि ऐसा होनेसे अतिप्रसङ्ग आता है—विपक्षकी भी सिद्धि ठहरती है।'

'और यदि साधनके विना स्वतः ही संवेदनाद्वैतरूप साध्यकी सिद्धि मानी जाय तो वह युक्त नहीं है—क्योंकि तब पुरुषाद्वैतकी भी स्वयं सिद्धिका प्रसङ्ग आता है, उसमें किसी भी बौद्धको विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती।'

निशायितस्तैः परशुः परघ्नः
स्वमूर्ध्नि निर्भेद-भयाऽनभिज्ञैः ।
वैतण्डिकैर्यैः कुसृतिः प्रणीता
मुने ! भवच्छासन-दृक्-प्रमूढैः ॥५८॥

'(इस तरह) हे वीर भगवन्! जिन वैतण्डिकोंने—परपक्षके दूषणकी प्रधानता अथवा एकमात्र धुनको लिये हुए संवेदनाद्वैतवादियोंने—कुसृतिका—कुत्सिता गति–प्रतीतिका—प्रणयन किया है उन आपके (स्याद्वाद) शासनकी दृष्टिसे प्रमूढ एवं निर्भेदके भयसे अनभिज्ञ जनोंने (दर्शनमोहके उदयसे आक्रान्त होनेके कारण) परघातक परशु–कुल्हाड़ेको अपने ही मस्तकपर मारा है!! अर्थात् जिस प्रकार दूसरेके घातके लिये उठाया हुआ कुल्हाड़ा यदि अपने ही मस्तकपर पड़ता है तो अपने मस्तकका विदारण करता है और उसको उठाकर चलानेवाले अपने घातके भयसे अनभिज्ञ कहलाते हैं उसी प्रकार परपक्षका निराकरण करने वाले वैतण्डिकोंके द्वारा दर्शनमोहके उदयसे आक्रान्त होनेके कारण जिस न्यायका प्रणयन किया गया है वह अपने पक्षका भी निराकरण करता है और इस लिये उन्हें भी स्वपक्षघातके भयसे अनभिज्ञ एवं दृक्प्रमूढ समझना चाहिये।'

भवत्यभावोऽपि च वस्तुधर्मो
भावान्तरं भाववदर्हतस्ते ।
प्रमीयते च व्यपदिश्यते च
वस्तु-व्यवस्थाऽङ्गममेयमन्यत् ॥५९॥

'(यदि यह कहा जाय कि 'साधनके विना साध्यकी स्वयं सिद्धि नहीं होती' इस वाक्यके अनुसार संवेदनाद्वैतकी भी सिद्धि नहीं होती तो मत हो, परन्तु शून्यतारूप सर्वका अभाव तो विचारबलसे प्राप्त हो जाता है, उसका परिहार नहीं किया जा सकता अतः उसे ही मानना चाहिये' तो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि) हे वीर अर्हन्! आपके मतमें अभाव भी वस्तुधर्म होता है—बाह्य तथा आभ्यन्तर वस्तुके असम्भव होनेपर सर्वशून्यतारूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदभाव सम्भव नहीं हो सकता; क्योंकि स्वधर्मीके असम्भव होनेपर किसी भी धर्मकी प्रतीति नहीं बन सकती। अभावधर्मकी जब प्रतीति है तो उसका कोई धर्मी (बाह्य-आभ्यन्तर पदार्थ) होना ही चाहिये, और इस लिये सर्वशून्यता घटित नहीं हो सकती। सर्व ही नहीं तो सर्व-शून्यता कैसी ? तत् ही नहीं तो तदभाव कैसा ? अथवा भाव ही नहीं तो अ-भाव किसका ? इसके सिवाय, यदि वह अभाव स्वरूपसे है तो उसके वस्तुधर्मत्वकी सिद्धि है; क्योंकि स्वरूपका नाम ही वस्तुधर्म है। अनेक धर्मोंमेंसे किसी धर्मके अभाव होनेपर वह अभाव धर्मान्तर ही होता है और जो धर्मान्तर होता है वह कैसे वस्तुधर्म सिद्ध नहीं होता ? होता ही है। यदि वह अभाव स्वरूपसे नहीं है तो वह अभाव ही नहीं है; क्योंकि अभावका अभाव होनेपर भावका विधान होता है। और यदि वह अभाव (धर्मका अभाव न होकर) धर्मीका अभाव है तो वह भावकी तरह भावान्तर होता है—जैसे कि कुम्भका जो अभाव है वह भूभाग है और वह भावान्तर (दूसरा पदार्थ) ही है, यौगमतकी मान्यताके अनुसार सकल शक्ति-विरहरूप तुच्छ नहीं है। सारांश यह कि अभाव यदि धर्मका है तो वह धर्मकी तरह धर्मान्तर होनेसे वस्तुधर्म है और यदि वह धर्मीका है तो वह भावकी तरह भावान्तर (दूसरा धर्मी) होनेसे स्वयं दूसरी वस्तु है—उसे सकलशक्ति-शून्य तुच्छ नहीं कह सकते। और इस सबका कारण यह है कि अभावको प्रमाणसे जाना जाता है, व्यपदिष्ट किया जाता है और वस्तु-व्यवस्थाके अङ्गरूपमें निर्दिष्ट किया जाता है।'

(यदि धर्म अथवा धर्मीके अभावको किसी प्रमाणसे नहीं जाना जाता तो वह कैसे व्यवस्थित होता है ? नहीं होता। यदि किसी प्रमाणसे जाना जाता है तो वह धर्म-धर्मीके स्वभाव-भावकी तरह वस्तु-धर्म अथवा भावान्तर हुआ। और यदि वह अभाव व्यपदेशको प्राप्त नहीं होता तो कैसे उसका प्रतिपादन किया जाता है ? उसका प्रतिपादन नहीं बनता। यदि व्यपदेशको प्राप्त होता है तो वह वस्तुधर्म अथवा वस्त्वन्तर ठहरा, अन्यथा उसका व्यपदेश नहीं बन सकता। इसी तरह वह अभाव यदि वस्तु-व्यवस्थाका अङ्ग नहीं तो उसकी कल्पनासे क्या नतीजा ? 'घटमें पटादिका अभाव है' इस प्रकार पटादिके परिहार-द्वारा अभावको घट-व्यवस्थाका कारण परिकल्पित किया जाता है; अन्यथा वस्तुमें सङ्कर दोषका प्रसङ्ग आता है—एक वस्तुको अन्य वस्तुरूप भी कहा जा सकता है, जिससे वस्तुकी कोई व्यवस्था नहीं रहती—अतः अभाव वस्तु-व्यवस्थाका अङ्ग है और इस लिये भावकी तरह वस्तुधर्म है।)

'जो अभाव-तत्त्व (सर्वशून्यता) वस्तु-व्यवस्थाका अङ्ग नहीं है वह (भाव-एकान्तकी तरह) अमेय (अप्रमेय) ही है—किसी भी प्रमाणके गोचर नहीं है।'

(इस तरह दूसरोंके द्वारा परिकल्पित वस्तुरूप या अवस्तुरूप सामान्य जिस प्रकार वाक्यका अर्थ नहीं बनता उसी प्रकार व्यक्तिमात्र परस्पर-निरपेक्ष उभयरूप सामान्य भी वाक्यका अर्थ नहीं बनता; क्योंकि वह सामान्य अमेय है—सम्पूर्ण प्रमाणोंके विषयसे अतीत है अर्थात् किसी प्रमाणसे उसे जाना नहीं जा सकता।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्त्ति-कला

(लेखक—'श्रीलोकपाल')

स्थापत्य या मूर्तिकलाने जैनमूर्तियोंमें अपने चरम उत्कर्षको पाया है। बौद्धमूर्तियोंको देखनेपर भी कुछ ऐसा ही भास होता है। पर जैन और बौद्धमूर्तियोंमें एक सूक्ष्म, पर बड़ा भारी भेद है, जिसकी पूर्ण महत्ता तो वही बतला सकता है जो मूर्तिकलाका ज्ञाता होनेके साथ ही साथ मनोविज्ञानका भी ज्ञाता हो और यदि दर्शनमें भी दख़ल रखता हो तो फिर पूछना ही क्या है। मैं तो तीनोंमेंसे कोई भी नहीं जानता। यों ही बुद्धि-पर जोर देनेसे मैं जो कुछ समझ सका हूँ उसी बूतेपर वह सब कुछ है जो मैंने लिखा है या लिखता हूँ। बुद्धकी मूर्तियोंको देखनेसे यही ज्ञात होता है कि बुद्ध किसी बड़े ही गम्भीर, गम्भीरतर या गम्भीरतम विचारमें लीन हैं। कोई बात सोच रहे हैं—विचार रहे हैं। इस तरह इनका मानसिक स्तरपर होना जाहिर होता है। जबकि जैनमूर्तियोंमें जो मुद्रा या भाव अङ्कित हैं उनसे यही दीखता है कि जिनेन्द्र (तीर्थङ्कर) ध्यानमग्न या परम निर्विकार ध्यानमें लीन हैं। इससे जैनमूर्तियाँ मानसिक स्तरसे निकाल कर आध्यात्मिक या आत्मिक ऊँचे स्तरपर पहुँचा दी गई हैं। इस तरह बुद्धकी मूर्तियाँ जब विचार-मुद्रा प्रदर्शित करती हैं तब जैन मूर्तियाँ ध्यान-मुद्रा। इस ध्यान-में भी और ध्यानोंसे विशेषता है। ये मुद्राएँ ही अपूर्णता (अपूर्णज्ञान) और पूर्णता (पूर्णज्ञान एवं निर्विकारता)की द्योतक जान पड़ती हैं। इतना ही नहीं, मूर्तिमें क्या बात होनेसे उसका दर्शकके ऊपर गम्भीर, स्थायी एवं गुरु (Serious) प्रभाव पड़ सकता है या पड़ेगा इसका भी हर तरहका ख़याल या अचूक सूक्ष्म ध्यान रखा गया है। जैनमूर्तियोंके बारेमें सोचनेपर अकसर ही मैं उनपर अङ्कित कई बातोंका कुछ मतलब नहीं लगा पाया हूं। लोगोंसे पूछनेपर उन्होंने भी कुछ संतोष-जनक उत्तर नहीं दिया या कुछका कुछ दे दिया। शास्त्रोंका ज्ञान मेरा बहुत ही कम नहींके बराबर है। पर अब जबसे मैंने इधर दो चार सप्ताहोंसे चित्रों या मूर्तियोंपर लिखना आरम्भ कर दिया तब बातें अपने आप बहुत कुछ साफ होती जाती हैं। पूरा विवरण—Details तो मैं नहीं जानता, न उनका ब्योरेवार कारण ही जान पाया हूँ पर अपनी विचार-प्रणालीपर चलते हुए मैंने यह देखा है कि इन जैनमूर्तियोंपर अङ्कित एक-एक रेखा या बनावटका मतलब है—और यह सब कुछ संयोगवश नहीं बल्कि बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक जानकारीके साथ ही की गई है—जैसे शिरोपरि, कान, वक्ष या हाथके ऊपरकी जो बनावटें हैं वे सब मूर्तिकी भव्यता, मजबूती वगैरहसे सम्बन्धित होते हुए भी गूढ मनोवैज्ञानिक महत्व रखती हैं।

सचमुच ही यथाविधिरूपसे बनी हुई जैनमूर्तियों-में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का सच्चा समन्वय एवं दिग्दर्शन होता है—Plain living and high thinking—अतिसरल स्वाभाविक सुन्दर मूर्ति और ऊँचेसे ऊँचे भाव उनपर अङ्कित होना ही 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'को साबित कर दिखलाते हैं—जो और कहीं नहीं मिलता।

बनारसके भेलूपुराके बड़े मन्दिरमें मैंने एक मूर्ति-को देखा जिसमें प्राचीन परिपाटीसे हटनेकी चेष्टा की गई है। मूर्ति विशेषरूपसे मानवाकृतिकी साधारण तौरसे बनाई गई है, जिसमें साधारण मानवसे जहाँ तक हो सके सदृशता लानेकी कोशिश की गई है। सिर या मस्तकके ऊपरकी बनावट या और सब Extra—अधिक चीजोंको निकाल दिया गया है। मैं जब भी उस मूर्तिके दर्शन करता तभी यह प्रश्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे मनमें बराबर उठता रहा कि क्यों इस मूर्तिका असर या प्रभाव मेरे ऊपर नहीं पड़ता जो पड़ना चाहिये। यह अब मैं सोचता हूं कि कोई मनोवैज्ञानिक कारण है—और उसी वजहसे हमारे पूर्वजोंने अपनी मूर्तियाँ बनवानेमें हर बातका हरएक रेखा-लाइनपर मुद्राको अङ्कित करनेमें इस मनोवैज्ञानिक जरूरत या आवश्यकताका बराबर ध्यान रखा है कि मूर्तिका प्रभाव जैसा पड़ना चाहिये या जिस कामको या मतलबको सम्पादन करनेके लिये मूर्तिका निर्माण हुआ है वह पूर्णरूपसे पूरा हो, जो केवल सीधा सादेरूपसे एक आदमीकी मूर्ति ज्योंका त्यों बना देनेसे नहीं होता था। बड़ी मूर्तियोंमें और छोटी मूर्तियोंमें एवं धातुकी मूर्तियोंमें और पत्थरकी मूर्तियोंमें फिर उनके रङ्गोंके कारण प्रभाव, असर तथा बनावटमें थोड़ा अन्तर हो सकता है—और पाया जाता है। पर उसमें भी ख़याल रखा गया है कि स्वाभाविकतासे अलग जाना कमसे कम हो और मानसिक प्रभाव उसका ऐसा हो कि स्वाभाविकताका ही भान हम मूर्तिसे करें। बल्कि साधारण तौरसे मूर्ति बना देनेसे उसका असर जो पड़ता उसमें उतनी स्वाभाविकताका भाव नहीं होता। और भी जो बड़ा भारी महान् भाव हमारे भीतर पैदा करना तथा मूर्तिपर दिखलाना था वह तो उसी तरीकेसे हो सकता था जैसा कि हम अपनी मूर्तियोंपर देखते हैं—अन्यथा सम्भव नहीं हैं। हाँ, ये सब बातें दिगम्बर मूर्तियोंके सम्बन्धमें हैं। मालूम होता है कि जैनियोंने जब देखा कि लोग दिगम्बरका ठीक ठीक महत्व या मतलब नहीं समझते एवं उसका मखौल तक उड़ाते हैं तब उनमेंसे कुछ ऐसोंने ही जो जैनोंकी संख्या कम होना नहीं पसन्द करते थे श्वेताम्बर मूर्तियोंको प्रचलित किया। पर ध्यानके वास्ते और निर्विकार ध्यान या मुद्राके वास्ते दिगम्बर मूर्तियाँ ही सर्वश्रेष्ठ हैं। बुद्धकी मूर्तियोंमें विचार-मुद्रा होनेसे वे सांसारिक अवस्थामें मनके आधारपर रहते हैं, जबकि जिनेन्द्रकी मूर्तियोंमें ध्यानमुद्रा होनेसे वे सांसारिक और मनके आधारसे अलग ऊपर उठ जाते हैं। बुद्धकी मूर्तियोंमें सांसारिकता तो छूटी रहती है पर संसार अभी रहता है जबकि जैनमूर्तियोंमें सांसारिकता और संसार दोनोंसे अलग ऊपर भाव हो जाते हैं। चित्रकलाके ज्ञाता यदि निष्पक्ष (Unbiased) होकर जैनमूर्तियोंका मनन करें तो उन्हें बड़ी भारी जानकारीका लाभ होगा।

ब्राह्मणधर्मने तो मूर्तिकलाको दिनपर दिन नीचे ही उतारा है। वहाँ तो मूर्तिमें केवल सौष्ठव और आडम्बरको ही स्थान दिया है—ध्यानसे कोई सम्बंध ही नहीं—और 'निर्विकार' होना तो बड़ी दूरकी बात है। दिनपर दिन हमारी मूर्तिकलाका ह्रास होता गया है और जो कुछ भी हम देखते हैं वह विकृत, अन्यथा-मार्ग या गलत रास्तेपर चला हुआ हो गया है। इसे सुधारनेके लिये धार्मिक मनोभावनाओंको एवं धर्मान्धताको दूर करना होगा तभी वह सम्भव है। आज तो हमने बुद्धि और तर्कसे 'तर्कमवालात' कर रखा है या उन्हें धर्मका दुश्मन बना दिया है। जब तक इनमें आपसमें मेल, सहयोग एवं अतिनिकट सम्बन्ध या एकता नहीं स्थापित होती तब तक कुछ सुधार होना तथा भारतकी उन्नतिका होना स्थायी नहीं हो सकता। दो-चार नेता कर ही क्या सकते हैं? वे आगे बढ़ेंगे—देशको आगे बढ़ावेंगे, पीछेसे धर्मान्धलोग उन्हें उनकी टाँगोंको पकड़कर खींच लेंगे—क्योंकि उन्हें बुद्धिसे तो कोई सरोकार (प्रयोजन) है ही नहीं। और संसारमें सक्रिय प्रभाव-शक्ति या स्थायी जो कुछ भी हो सकता है वह बुद्धिसे ही हो सकता है। बाकी तो सब कुछ भ्रमपूर्ण—विकृत—उल्टापलटा एवं गलत ही है—चाहे भले ही हम अपनी बहक या घमण्डमें या अज्ञानतामें उसे ही ठीक सीधा या सही मानते रहें। पर फल तो हमारे माननेके ऊपर निर्भर नहीं करता वह तो वस्तुस्वभावपर एवं तथ्य, तत्त्व या सत्यपर ही निर्भर करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन अध्यात्म

[पं० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य]

पदार्थस्थिति–

'नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः' जगतमें जो सत् है उसका सर्वथा विनाश नहीं हो सकता और सर्वथा नए किसी असत्का सद्रूपमें उत्पाद नहीं हो सकता। जितने मौलिक द्रव्य इस जगतमें अनादिसे विद्यमान हैं वे अपनी अवस्थाओंमें परिवर्तित होते रहते हैं। अनन्तजीव, अनन्तानन्त पुद्गलअणु, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश और असंख्य कालाणु इनसे यह लोक व्याप्त है। ये छह जातिके द्रव्य मौलिक हैं, इनमेंसे न तो एक भी द्रव्य कम हो सकता और न कोई नया उत्पन्न होकर इनकी संख्यामें वृद्धि कर सकता है। कोई भी द्रव्य अन्यद्रव्यरूपमें परिणमन नहीं कर सकता, जीव जीव ही रहेगा पुद्गल नहीं हो सकता। जिस तरह विजातीय द्रव्यरूपमें किसी भी द्रव्यका परिणमन नहीं होता उसी तरह एक जीव दूसरे सजातीयजीव-द्रव्यरूप या एक पुद्गल दूसरे सजातीय पुद्गलद्रव्यरूपमें सजातीय परिणमन भी नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायों-अवस्थाओंकी धारामें प्रवाहित है किसी भी विजातीय या सजातीय द्रव्यान्तरकी धारामें उसका परिणमन नहीं हो सकता। यह सजातीय या विजातीय द्रव्यान्तरमें असंक्रान्ति ही प्रत्येक द्रव्यकी मौलिकता है। इन द्रव्योंमें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्योंका परिणमन सदा शुद्ध ही रहता है, इनमें विकार नहीं होता, एक जैसा परिणमन प्रतिसमय होता रहता है। जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें शुद्धपरिणमन भी होता है तथा अशुद्ध परिणमन भी। इन दो द्रव्योंमें क्रियाशक्ति भी है जिससे इनमें हलन-चलन, आना-जाना आदि क्रियाएँ होती हैं। शेष द्रव्य निष्क्रिय हैं वे जहाँ हैं वहीं रहते हैं। आकाश सर्वव्यापी है। धर्म और अधर्म लोकाकाशके बराबर हैं। पुद्गल और काल अणुरूप हैं। जीव असंख्यातप्रदेशी है और अपने शरीरप्रमाण विविध आकारोंमें मिलता है। एक पुद्गलद्रव्य ही ऐसा है जो सजातीय अन्य पुद्गलद्रव्योंसे मिलकर स्कन्ध बन जाता है और कभी कभी इतना रासायनिक मिश्रण हो जाता है कि उसके अणुओंकी पृथक् सत्ताका भान करना भी कठिन होता है। तात्पर्य यह कि जीवद्रव्य और पुद्गल-द्रव्यमें अशुद्ध परिणमन होता है और वह एक दूसरे के निमित्तसे। पुद्गलमें इतनी विशेषता है कि उसकी अन्य सजातीयपुद्गलोंसे मिलकर स्कन्ध-पर्याय भी होती है पर जीवकी दूसरे जीवसे मिलकर स्कन्ध पर्याय नहीं होती। दो विजातीय द्रव्य बँधकर एक पर्याय नहीं प्राप्त कर सकते। इन दो द्रव्योंके विविध परिणमनोंका स्थूलरूप यह दृश्यजगत् है।

द्रव्य-परिणमन–

प्रत्येक द्रव्य *परिणामीनित्य* है। पूर्वपर्याय नष्ट होती है उत्तर उत्पन्न होती है पर मूलद्रव्यकी धारा अविच्छिन्न चलती है। यही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकता प्रत्येक द्रव्यका निजी स्वरूप है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्योंका सदा शुद्ध परिणमन ही होता है। जीवद्रव्यमें जो मुक्त जीव हैं उनका परिणमन शुद्ध ही होता है कभी भी अशुद्ध नहीं होता। संसारी जीव और अनन्त पुद्गलद्रव्यका शुद्ध और अशुद्ध दोनों ही प्रकारका परिणमन होता है। इतनी विशेषता है कि जो संसारी जीव एकबार मुक्त होकर शुद्ध परिणमनका अधिकारी हुआ वह फिर कभी भी अशुद्ध नहीं होगा, पर पुद्गलद्रव्यका कोई नियम नहीं है। वे कभी स्कन्ध बनकर अशुद्ध परिणमन करते हैं तो परमाणुरूप होकर अपनी शुद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवस्थामें आजाते हैं फिर स्कन्ध बन जाते हैं इस तरह उनका विविध परिणमन होता रहता है। जीव और पुद्गलमें वैभाविकी शक्ति है जिसके कारण वे विभाव परिणमनको भी प्राप्त होते हैं।

द्रव्यगतशक्ति–

धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक एक हैं। कालाणु असंख्यात हैं। प्रत्येक कालाणुमें एक-जैसी शक्तियाँ हैं। वर्तना करनेकी जितने अविभागप्रतिच्छेद-वाली शक्ति एक कालाणुमें है वैसी ही दूसरे कालाणुमें। इस तरह कालाणुओंमें परस्पर शक्ति-विभिन्नता या परिणमन-विभिन्नता नहीं है।

पुद्गलद्रव्यके एक अणुमें जितनी शक्तियाँ हैं उतनी ही और वैसी ही शक्तियाँ परिणमन-योग्यता अन्य पुद्गलाणुओंमें हैं। मूलतः पुद्गल-अणुद्रव्योंमें शक्तिभेद, योग्यताभेद या स्वभावभेद नहीं है। यह तो सम्भव है कि कुछ पुद्गलाणु मूलतः स्निग्ध स्पर्शवाले हों और दूसरे मूलतः रूक्ष, कुछ शीत और कुछ उष्ण, पर उनके ये गुण नियत नहीं, रूक्षगुणवाला भी स्निग्धगुणवाला बन सकता है तथा स्निग्धगुण-वाला भी रूक्ष। शीत भी उष्ण बन सकता है उष्ण भी शीत। तात्पर्य यह कि पुद्गलाणुओंमें ऐसा कोई जातिभेद नहीं है जिससे किसी भी पुद्गलाणुका पुद्गलसम्बन्धी कोई परिणमन न हो सकता हो। पुद्गलद्रव्यके जितने भी परिणमन हो सकते हैं उन सबकी योग्यता और शक्ति प्रत्येक पुद्गलाणुमें स्व-भावतः है, यही द्रव्यशक्ति कहलाती है। स्कन्ध-अवस्थामें पर्यायशक्तियाँ विभिन्न हो सकती हैं। जैसे किसी अग्निस्कन्धमें सम्मिलित परमाणुका उष्ण-स्पर्श और तेजोरूप था, पर यदि वह अग्निस्कन्धसे जुदा हो जाय तो उसका शीतस्पर्श तथा कृष्णरूप हो सकता है। और यदि वह स्कन्ध ही भस्म बन जाय तो सभी परमाणुओंका रूप और स्पर्श आदि बदल सकते हैं।

सभी जीवद्रव्योंकी मूल स्वभावशक्तियाँ एक जैसी हैं, ज्ञानादि अनन्तगुण और अनन्त चैतन्य-परिणमनकी प्रत्येक शक्ति मूलतः प्रत्येक जीवद्रव्यमें है। हाँ, अनादिकालीन अशुद्धताके कारण उनका विकास विभिन्न प्रकारसे होता है। चाहे हो भव्य या अभव्य, दोनों ही प्रकारके प्रत्येक जीव एक-जैसी शक्तियोंके आधार हैं, शुद्ध दशामें सभी मुक्त एक-जैसी शक्तियों-के स्वामी बन जाते हैं और प्रतिसमय अखण्ड शुद्ध परिणमनमें लीन रहते हैं। संसारी जीवोंमें भी मूलतः सभी शक्तियाँ हैं। इतना विशेष है कि अभव्य-जीवोंमें केवलज्ञानादिशक्तियोंके अविर्भावकी शक्ति नहीं मानी जाती। उपर्युक्त विवेचनसे एक बात निर्विवादरूपसे स्पष्ट हो जाती है कि चाहे द्रव्य चेतन हो या अचेतन, प्रत्येक मूलतः अपनी अपनी चेतन-अचेतन शक्तियोंका धनी है उनमें कहीं कुछ भी न्यूना-धिकता नहीं है। अशुद्धदशामें अन्य पर्यायशक्तियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं और विलीन होती रहती हैं।

परिणमनके नियतत्वकी सीमा–

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि द्रव्योंमें परि-णमन होनेपर भी कोई भी द्रव्य सजातीय या विजातीय द्रव्यान्तररूपमें परिणमन नहीं कर सकता। अपनी धारामें सदा उसका परिणमन होता रहता है। द्रव्यगत मूल स्वभावकी अपेक्षा प्रत्येक द्रव्यके अपने परिणमन नियत हैं। किसी भी पुद्गलाणुके वे सभी पुद्गलसम्बन्धीपरिणमन प्रतिसमय हो सकते हैं और किसी भी जीवके जीवसम्बन्धी अनन्त परिणमन। यह तो सम्भव है कि कुछ पर्यायशक्तियोंसे सीधा सम्बन्ध रखनेवाले परिणमन कारणभूत पर्यायशक्ति-के न होने पर न हों। जैसे प्रत्येक पुद्गलपरमाणु यद्यपि घट बन सकता है फिर भी जबतक अमुक परमाणु-स्कन्ध मिट्टीरूप पर्यायको प्राप्त न होंगे तबतक उनमें मिट्टीरूप पर्यायशक्तिके विकाससे होनेवाली घटपर्याय नहीं हो सकती। परन्तु मिट्टीपर्यायसे होनेवाली घट, सकोरा आदि जितनी पर्यायें सम्भवित हैं वे निमित्त-के अनुसार कोई भी हो सकती हैं। जैसे जीवमें मनुष्यपर्यायमें आँखसे देखनेकी योग्यता विकसित है तो वह अमुक समयमें जो भी सामने आयेगा उसे देखेगा। यह कदापि नियत नहीं है कि अमुक समयमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमुक पदार्थको ही देखनेकी उसमें योग्यता है शेषकी नहीं या अमुक पदार्थमें उस समय उसके द्वारा ही देखे जानेकी योग्यता है अन्यके द्वारा नहीं। मतलब यह कि परिस्थितिवश जिस पर्यायशक्तिका द्रव्यमें विकास हुआ है उस शक्तिसे होनेवाले यावत्कार्योंमेंसे जिस कार्यकी सामग्री या बलवान् निमित्त मिल जायेंगे उसके अनुसार उसका वैसा परिणमन होता जायगा। एक मनुष्य गद्दीपर बैठा है उस समय उसमें हँसना-रोना, आश्चर्य करना, गम्भीरतासे सोचना आदि अनेक कार्योंकी योग्यता है। यदि बहुरूपिया सामने आजाय और उसकी उसमें दिलचस्पी हो तो हँसनेरूप पर्याय हो जायगी। कोई शोकका निमित्त मिल जाय तो रो भी सकता है। अकस्मात् बात सुनकर आश्चर्यमें डूब सकता है और तत्त्वचर्चा सुनकर गम्भीरतापूर्वक सोच भी सकता है। इसलिए यह समझना कि प्रत्येक द्रव्यका प्रतिसमयका परिणमन नियत है उसमें कुछ भी हेर-फेर नहीं हो सकता और न कोई हेर-फेर कर सकता है, द्रव्यके परिणमनस्वभावको गम्भीरतासे न सोचनेके कारण भ्रमात्मक है। द्रव्यगत परिणमन नियत हैं अमुक स्थूलपर्यायगत शक्तियोंके परिणमन भी नियत हो सकते हैं जो उस पर्यायशक्तिके अवश्यंभावी परिणमनोंमेंसे किसी एकरूपमें निमित्तानुसार सामने आते हैं। जैसे एक अंगुली अगले समय टेढ़ी हो सकती है, सीधी रह सकती है, टूट सकती है, घूम सकती है, जैसी सामग्री और कारण-कलाप मिलेंगे उसमें विद्यमान इन सभी योग्यताओंमेंसे अनुकूल योग्यताका विकास हो जायगा। उस कारणशक्तिसे वह अमुक परिणमन भी नियत कराया जा सकता है जिसकी पूरी सामग्री अविकल हो प्रतिबन्धक कारणकी सम्भावना न हो ऐसी अन्तिमक्षणप्राप्त शक्तिसे वह कार्य नियत ही होगा, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रत्येक द्रव्यका प्रतिक्षणका परिणमन सुनिश्चित है उसमें जिसे जो निमित्त होना है नियति-चक्रके पेटमें पड़कर ही वह उसका निमित्त बना रहेगा। यह अतिसुनिश्चित है कि हरएक द्रव्यका प्रति-समय कोई न कोई परिणमन होना ही चाहिए। पुराने संस्कारोंके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे निश्चित कार्यकारणभाव बनाए जा सकते हैं जिनसे यह नियत किया जा सकता है कि अमुक समयमें इस द्रव्यका ऐसा परिणमन होगा ही पर इस कारणताकी अवश्यंभाविता सामग्रीकी अविकलता तथा प्रतिबन्धक-कारणकी शून्यता पर ही निर्भर है। जैसे हल्दी और चूना दोनों एक जलपात्रमें डाले गये तो यह अवश्यंभावी है कि उनका लालरङ्गका परिणमन हो। एक बात यहाँ यह खासतौरसे ध्यानमें रखनेकी है कि अचेतन परमाणुओंमें बुद्धिपूर्वक क्रिया नहीं हो सकती। उनमें अपने संयोगोंके आधारसे क्रिया तो होती रहती है। जैसे पृथिवीमें कोई बीज पड़ा हो तो सरदी गरमीका निमित्त पाकर उसमें अंकुर आजायगा और वह पल्लवित, पुष्पित होकर पुनः बीजको उत्पन्न कर देगा। गरमीका निमित्त पाकर जल भाप बन जायगा। पुनः भाप सरदीका निमित्त पाकर जलके रूपमें बरसकर पृथिवीको शस्यश्यामल बना देगा। कुछ ऐसे भी अचेतन द्रव्योंके परिणमन हैं जो चेतन निमित्तसे होते हैं जैसे मिट्टीका घड़ा बनना या रुईका कपड़ा बनना। तात्पर्य यह कि अतीतके संस्कारवश वर्तमान क्षणमें जितनी और जैसी योग्यताएँ विकसित होंगी और जिनके विकासके अनुकूल निमित्त मिलेंगे द्रव्यों-का वैसा वैसा परिणमन होता जायगा। भविष्यका कोई निश्चित कार्यक्रम द्रव्योंका बना हुआ हो और उसी सुनिश्चित अनन्त क्रमपर यह जगत चल रहा हो यह धारणा ही भ्रमपूर्ण है।

नियताऽनियतत्ववाद—

जैन दृष्टिसे द्रव्यगत शक्तियाँ नियत हैं पर उनके प्रतिक्षणके परिणमन अनिवार्य हैं। एक द्रव्यकी उस समयकी योग्यतासे जितने प्रकारके परिणमन हो सकते हैं उनमेंसे कोई भी परिणमन जिसके कि निमित्त और अनुकूल सामग्री मिल जायगी हो जायगा। तात्पर्य यह कि प्रत्येक द्रव्यकी शक्तियाँ तथा उनसे होनेवाले परिणमनोंकी जाति सुनिश्चित है। कभी भी पुद्गलके परिणमन जीवमें तथा जीवके परिणमन पुद्गल में नहीं हो सकते। पर प्रतिसमय कैसा परिणमन होगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह अनियत है। जिस समय जो शक्ति विकसित होगी तथा अनुकूल निमित्त मिल जायगा उसके बाद वैसा परिणमन हो जायगा। अतः नियतत्व और अनियतत्व दोनों धर्म सापेक्ष हैं। अपेक्षाभेदसे सम्भव हैं।

नियतिवाद नहीं—

जो होना होगा वह होगा ही, हमारा कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है, इस तरहके निष्क्रिय नियतिवादके विचार जैनतत्त्वस्थितिके प्रतिकूल हैं। जो द्रव्यगत शक्तियाँ नियत हैं उनमें हमारा कोई पुरुषार्थ नहीं, हमारा पुरुषार्थ तो कोयलेकी हीरापर्यायके विकास करानेमें है। यदि कोयलेके लिए उसकी हीरापर्यायके विकासके लिए आवश्यक सामग्री न मिले तो या तो वह जलकर भस्म बनेगा या फिर खानिमें ही पड़े पड़े समाप्त हो जायगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसमें उपादान शक्ति नहीं है उसका परिणमन भी निमित्तसे हो सकता है या निमित्तमें यह शक्ति है जो निरुपादानको परिणमन करा सके।

उभय कारणोंसे कार्य—

कार्योत्पत्तिके लिए दोनों ही कारण चाहिएँ उपादान और निमित्त; जैसा कि स्वामीसमन्तभद्रने कहा है कि *"यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः"* अर्थात् कार्य बाह्य-आभ्यन्तर दोनों कारणोंसे होता है। यही अनाद्यनन्त वैज्ञानिक कारण-कार्यधारा ही द्रव्य है जिसमें पूर्वपर्याय अपनी सामग्रीके अनुसार सदृश, विसदृश, अर्धसदृश, अल्पसदृश आदिरूपसे अनेक पर्यायोंकी उत्पादक होती है। मान लीजिए एक जलबिन्दु है उसकी पर्याय बदल रही है, वह प्रतिक्षण जलबिन्दु रूपसे परिणमन कर रही है पर यदि गरमीका निमित्त मिलता है तो तुरन्त भाप बन जाती है। किसी मिट्टीमें यदि पड़ गई तो सम्भव है पृथिवी बन जाय। यदि साँपके मुँहमें चली गई ज़हर बन जायगी। तात्पर्य यह कि एकधारा पूर्व-उत्तर पर्यायोंकी बहती है उसमें जैसे जैसे संयोग होते जायेंगे उसका उस जातिमें परिणमन हो जायगा। गङ्गाकी धारा हरिद्वारमें जो है वह कानपुरमें नहीं, और कानपुरकी गटर आदिका संयोग पाकर इलाहाबादमें बदली और इलाहाबादकी गन्दगी आदिके कारण काशीकी गङ्गा जुदी ही हो जाती है। यहाँ यह कहना कि "गङ्गाके जलके प्रत्येक परमाणुका प्रतिसमयका सुनिश्चित कार्यक्रम बना हुआ है उसका जिस समय परिणमन होना है वह होकर ही रहेगा" द्रव्यकी विज्ञानसम्मत कार्यकारणपरम्पराके प्रतिकूल है।

'जं जस्स जम्मि' आदि भावनाएं हैं—

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें सम्यग्दृष्टिके चिन्तनमें ये दो गाथाएँ लिखी हैं—

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं व अहव मरणं वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को चालेदुं सक्को इंदो वा अह जिणिं वा ॥३२२॥

अर्थात् जिसका जिस समय जहाँ जैसे जन्म या मरण होना है उसे इन्द्र या जिनेन्द्र कोई भी नहीं टाल सकता, वह होगा ही।

इन गाथाओंका भावनीयार्थ यही है कि जो जब होना है होगा उसमें कोई किसीका शरण नहीं है आत्मनिर्भर रहकर जो आवे वह सहना चाहिए। इस तरह चित्तसमाधानके लिए भाई जानेवाली भावनाओंसे वस्तुव्यवस्था नहीं हो सकती। अनित्यभावनामें ही कहते हैं कि जगत् स्वप्नवत् है इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि शून्यवादियोंकी तरह जगत् पदार्थोंकी सत्तासे शून्य है बल्कि यही उसका तात्पर्य है कि स्वप्नकी तरह वह आत्महितके लिए वास्तविक कार्यकारी नहीं है। यहाँ सम्यग्दृष्टिके चिन्तन-भावनामें स्वावलम्बनका उपदेश है। उससे पदार्थव्यवस्था नहीं की जा सकती।

सबसे बड़ा अस्त्र सर्वज्ञत्व—

नियतिवादी या तथोक्त अध्यात्मवादियोंका सबसे बड़ा तर्क है कि सर्वज्ञ है या नहीं? यदि सर्वज्ञ है तो वह त्रिकालज्ञ होगा अर्थात् भविष्यज्ञ भी होगा। फलतः वह प्रत्येक पदार्थका अनन्तकाल तक प्रतिक्षण जो होना है उसे ठीकरूपमें जानता है। इस तरह प्रत्येक परमाणुकी प्रतिसमयकी पर्याय सुनिश्चित है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनका परस्पर जो निमित्तनैमित्तिकजाल है वह भी उसके ज्ञानके बाहिर नहीं है। सर्वज्ञ माननेका दूसरा अर्थ है नियतिवादी होना। पर, आज जो सर्वज्ञ नहीं मानते उनके सामने हम नियतिचक्रको कैसे सिद्ध कर सकते हैं? जिस अध्यात्मवादके मूलमें हम नियतिवादको पनपाते हैं उस अध्यात्मदृष्टिसे सर्वज्ञता व्यवहारनयकी अपेक्षासे है। निश्चयनयसे तो आत्मज्ञतामें ही उसका पर्यवसान होता है जैसाकि स्वयं आचार्य कुन्दकुन्दने नियमसार (गा. १५८)में लिखा है—

"जाणदि पस्सदि सव्वं व्यवहारणएण केवली भगवं ।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥"

अर्थात् केवली भगवान् व्यवहारनयसे सब पदार्थोंको जानते देखते हैं। निश्चयसे केवलज्ञानी अपनी आत्माको जानता देखता है।

अध्यात्मशास्त्रमें निश्चयनयकी भूतार्थता और परमार्थता तथा व्यवहारनयकी अभूतार्थतापर विचार करनेसे तो अध्यात्मशास्त्रमें पूर्णज्ञानका पर्यवसान अन्ततः आत्मज्ञानमें ही होता है। अतः सर्वज्ञत्वकी दलीलका अध्यात्मचिन्तनमूलक पदार्थव्यवस्थामें उपयोग करना उचित नहीं है।

नियतिवादमें एक ही प्रश्न एक ही उत्तर—

नियतिवादमें एक ही उत्तर है 'ऐसा ही होना था, जो होना होगा सो होगा ही' इसमें न कोई तर्क है, न कोई पुरुषार्थ और न कोई बुद्धि। वस्तुव्यवस्थामें इस प्रकारके मृत विचारोंका क्या उपयोग? जगत्में विज्ञानसम्मत कार्यकारणभाव है। जैसी उपादानयोग्यता और जो निमित्त होंगे तदनुसार चेतन-अचेतनका परिणमन होता है। पुरुषार्थ निमित्त और अनुकूल सामग्रीके जुटानेमें है। एक अग्नि है पुरुषार्थी यदि उसमें चन्दनका चूरा डाल देता है तो सुगन्धित धुआँ निकलेगा, यदि बाल आदि डालता है तो दुर्गन्धित धुआँ उत्पन्न होगा। यह कहना कि चूराको उसमें पड़ना था, पुरुषको उसमें डालना था, अग्निको उसे ग्रहण करना ही था। इसमें यदि कोई हेर-फेर करता है तो नियतिवादीका वही उत्तर कि 'ऐसा ही होना था'। मानो जगत्के परिणमनोंको 'ऐसा ही होना था' इस नियति भगवतीने अपनी गोदमें लेरखा हो।

अध्यात्मकी अकर्तृत्व भावनाका उपयोग—

तब अध्यात्मशास्त्रकी अकर्तृत्वभावनाका क्या अर्थ है? अध्यात्ममें समस्त वर्णन उपादानयोग्यताके आधारसे किया गया है। निमित्त मिलानेपर यदि उपादानयोग्यता विकसित नहीं होती, कार्य नहीं हो सकेगा। एक ही निमित्त-अध्यापकसे एक छात्र प्रथम श्रेणीका विकास करता है जबकि दूसरा द्वितीय श्रेणीका और तीसरा अज्ञानीका अज्ञानी बना रहता है। अतः अन्ततः कार्य अन्तिमक्षणवर्ती उपादानयोग्यतासे ही होता है। हाँ, निमित्त उस योग्यताको विकासोन्मुख बनाते हैं, तब अध्यात्मशास्त्रका कहना है कि निमित्तको यह अहङ्कार नहीं होना चाहिए कि हमने उसे ऐसा बना दिया, निमित्तकारणको सोचना चाहिए कि इसकी उपादानयोग्यता न होती तो मैं क्या कर सकता था अतः अपनेमें कर्तृत्वजन्य अहङ्कारके निवृत्तिके लिए उपादानमें कर्तृत्वकी भावनाको दृढमूल करना चाहिए ताकि परपदार्थकर्तृत्वका अहङ्कार हमारे चित्तमें आकर रागद्वेषकी सृष्टि न करे। बड़ेसे बड़ा कार्य करके भी मनुष्यको यही सोचना चाहिए कि मैंने क्या किया? यह तो उसकी उपादानयोग्यताका ही विकास है मैं तो एक साधारण निमित्त हूं। 'क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यं' अर्थात् क्रिया योग्यमें परिणमन कराती है अयोग्यमें नहीं। इस तरह अध्यात्मकी अकर्तृत्वभावना हमें वीतरागताकी ओर ले जानेके लिए है। न कि उसका उपयोग नियतिवादके पुरुषार्थ विहीन कुमार्गपर लेजानेको किया जाय।

समयसारमें निमित्ताधीनउपादान परिणमन—

समयसार (गा० ८६-८८)में जीव और कर्मका परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि—

"जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण वि कुव्वदि कम्मगुणेजीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ॥
पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥"

अर्थात् जीवके भावोंके निमित्तसे पुद्गलोंकी कर्मरूप पर्याय होती है और पुद्गलकर्मोंके निमित्तसे जीव रागादिरूपसे परिणमन करता है। इतना समझ लेना चाहिए कि जीव उपादान बनकर पुद्गलके गुणरूपसे परिणमन नहीं कर सकता और न पुद्गल उपादान बनकर जीवके गुणरूपसे परिणति कर सकता है। हाँ, परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके अनुसार दोनोंका परिणमन होता है। इस कारण उपादानदृष्टिसे आत्मा अपने भावोंका कर्त्ता है पुद्गलके ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्मात्मक परिणमनका कर्त्ता नहीं है।

इस स्पष्ट कथनसे कुन्दकुन्दाचार्यकी कर्तृत्व-अकर्तृत्वकी दृष्टि समझमें आ जाती है। इसका विशद अर्थ यह है कि प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमनमें उपादान है दूसरा उसका निमित्त हो सकता है उपादान नहीं। परस्पर निमित्तसे दोनों उपादानोंका अपने अपने भावरूपसे परिणमन होता है। इसमें निमित्त-नैमित्तिकभावका निषेध कहाँ है ? निश्चयदृष्टिसे पर-निरपेक्ष आत्मस्वरूपका विचार है उसमें कर्तृत्व अपने उपयोगरूपमें ही पर्यवसित होता है। अतः कुन्दकुन्दके मतसे द्रव्यस्वरूपका अध्यात्ममें वही निरूपण है जो आगे समन्तभद्रादि आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें बताया है।

मूलमें भूल कहां ?—

इसमें कहाँ मूलमें भूल है ? जो उपादान है वह उपादान है जो निमित्त है वह निमित्त ही है। कुम्हार घटका कर्त्ता है यह कथन व्यवहार हो सकता है। कारण, कुम्हार वस्तुतः अपनी हलन-चलनक्रिया तथा अपने घट बनानेके उपयोगका ही कर्त्ता है, उसके निमित्तसे मिट्टीके परमाणुमें वह आकार उत्पन्न हो जाता है। मिट्टीको घड़ा बनना ही था और कुम्हारके हाथको वैसा होना ही था और हमें उसकी व्याख्या ऐसी करनी ही थी, आपको ऐसा प्रश्न करना ही था और हमें यह उत्तर देना ही था। ये सब बातें न अनुभव सिद्ध कार्यकारणभावके अनुकूल ही हैं और न तर्कसिद्ध।

निश्चय और व्यवहार—

निश्चयनय वस्तुकी परनिरपेक्ष स्वभूत दशाका वर्णन करता है। वह यह बतायगा कि प्रत्येक जीव स्वभावसे अनन्तज्ञान-दर्शन या अखण्ड चैतन्यका पिण्ड है। आज यद्यपि वह कर्मनिमित्तसे विभाव परिणमन कर रहा है पर उसमें स्वभावभूत शक्ति अपने अखण्ड निर्विकार चैतन्य होनेकी है। व्यवहारनय परसापेक्ष अवस्थाओंका वर्णन करता है। वह जहाँ आत्माको पर-घटपटादि पदार्थोंके कर्तृत्वके वर्णनसम्बन्धी लम्बी उड़ान लेता है वहाँ निश्चयनय रागादि भावोंके कर्तृत्वको भी आत्मकोटिसे बाहर निकाल लेता है और आत्माको अपने शुद्ध भावोंका ही कर्त्ता बनाता है अशुद्ध भावोंका नहीं। निश्चयनयकी भूतार्थताका तात्पर्य यह है कि वही दशा आत्माके लिए वास्तविक उपादेय है, परमार्थ है, यह जो रागादिरूप विभावपरिणति है यह अभूतार्थ है अर्थात् आत्माके लिए उपादेय नहीं है इसके लिए वह अपरमार्थ है अग्राह्य है।

निश्चयनयका वर्णन हमारा लक्ष्य है—

निश्चयनय जो वर्णन करता है कि मैं सिद्ध हूँ बुद्ध हूँ निर्विकार हूँ निष्कषाय हूँ यह सब हमारा लक्ष्य है। इसमें 'हूँ'के स्थानमें 'हो सकता हूँ' यह प्रयोग भ्रम उत्पन्न नहीं करेगा। वह एक भाषाका प्रकार है। जब साधक अपनी अन्तर्जल्प अवस्थामें अपने ही आत्माको सम्बोधन करता है कि हे आत्मन्, तू तो स्वभावसे सिद्ध है, बुद्ध है, वीतराग है, आज फिर यह तेरी क्या दशा हो रही है तू कषायी और अज्ञानी बना है। यह पहला 'सिद्ध है बुद्ध है वाला' अंश दूसरे 'आज फिर तेरी क्या दशा हो रही है तू कषायी अज्ञानी बना है' इस अंशसे ही परिपूर्ण होता है।

इस लिए निश्चयनय हमारे लिए अपने द्रव्यगत-मूलस्वभावकी ओर संकेत कराता है जिसके बिना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हम कषायपङ्कसे नहीं निकल सकते। अतः निश्चय-नयका सम्पूर्ण वर्णन हमारे सामने कागजपर मोटे मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ टँगा रहे ताकि हम अपनी उस परमदशाको प्राप्त करनेकी दिशामें प्रयत्नशील रहें। न कि हम तो सिद्ध हैं कर्मोंसे अस्पृष्ट हैं यह मानकर मिथ्या अहङ्कारका पोषण करें और जीवन-चारित्र्यसे विमुख हो निश्चयैकान्तरूपी मिथ्यात्वको बढ़ावें।

ये कुन्दकुन्दके अवतार—

सोनगढ़में यह प्रवाद है कि श्रीकानजीस्वामी कुन्दकुन्दके जीव हैं और वे कुन्दकुन्दके समान ही सद्गुरुरूपसे पुजते हैं। उन्हें सद्गुरुभक्ति ही विशिष्ट आकर्षणका कार्यक्रम है। यहाँसे नियतिवाद-की आवाज अब फिरसे उठी है और वह भी कुन्द-कुन्दके नामपर। भावनीय पदार्थ जुदा हैं उनसे तत्त्वव्यवस्था नहीं होती यह मैं पहले लिख चुका हूँ। यों ही भारतवर्षने नियतिवाद और ईश्वरवादके कारण तथा कर्मवादके स्वरूपको ठीक नहीं समझनेके कारण अपनी यह नितान्त परतन्त्र स्थिति उत्पन्न कर ली थी। किसी तरह अब नव-स्वातन्त्र्योदय हुआ है। इस युगमें वस्तुतत्त्वका वह निरूपण हो जिससे सुन्दर समाजव्यवस्था-घटक व्यक्तिका निर्माण हो। धर्म और अध्यात्मके नामपर और कुन्दकुन्दाचार्य-के सुनामपर आलस्य-पोषक नियतिवादका प्रचार न हो। हम सम्यक् तत्त्वव्यवस्थाको समझें और समन्तभद्रादि आचार्योंके द्वारा परिशीलित उभयमुखी तत्त्वव्यवस्थाका मनन करें। —भारतीयज्ञानपीठ काशी।

——*——

तीन चित्र

(लेखक—श्रीजमनालाल जैन, साहित्यरत्न)

देखनेकी वस्तु दीखे बिना कैसे रहे? परन्तु यदि कोई उसे देख नहीं पाता तो वस्तुका क्या दोष? और जो नहीं देखना चाहता उसे भी कैसे दोष दिया जाय? ऐसे ही कई प्रश्नोंको लेकर मैं हैरतमें पड़ गया हूँ।····

एक कलाकार है। उसने अपनी मानसिक भूमिकापर गहराई तथा वेदनाकी अनुभूतियोंका बल पाकर अपने पाँव स्थिर किये हैं और जगतको अपनी साधना द्वारा सत्य, शिव तथा सुन्दरकी अभिव्यक्ति दी है। उसकी रेखा-रेखामें, शब्द-शब्दमें, कल्पनाके कण-कणमें कविताकी लहर-लहरमें जीवन बोल रहा है, गा रहा है, नाच रहा है। पढ़ते, सुनते तथा देखते समय ऐसा लगता है मानो प्रत्येक प्राणीकी आत्म-पुकार उसकी अपनी व्यथामें समाहित हो गई है। उसकी कला विश्वमानवताकी प्रतीक, प्रतिनिधि हो उठी है।

पर?

पर वह अपने आपमें अकेला है, अनन्त आकाश तथा विस्तृत वसुधाके बीच उसका अस्तित्व अधरताका प्रतीक है। उसका ऐसा कोई नहीं जो उसे अपना कह सके, कोई नहीं जो उसकी निन्दा करनेकी सामर्थ्य रख सके। प्रकृतिके जिन कुरूप-सुरूप उपादानोंको, ज्योतिर्मण्डलके प्रकाशमान नक्षत्रोंको, नद-नदी-निर्झरोंको उसने अविभाज्य प्यार किया, अपनेमें आत्म-सात् किया, क्या वे भी उससे दूर नहीं हैं? उसके एकाकी, निरीहपनको अनुभव कर शायद यह सब भी अपनी विवशताओंको, दुर्बलताओंको देख, आँखोंसे ओझल हो जाते रहते हैं। और वह है जो अपना कार्य अनवरत किये जा रहा है। विश्वकी मानवताको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश देनेवाला वह, शायद अपने प्रति अंधकारके सिवा किसीकी कल्पना भी नहीं कर पा रहा है।

जिसे अपनी ही सुध नहीं है, अपने अस्तित्व तकसे बेखबर है, क्या ऐसा व्यक्ति दुनियादार हो सकता है? और जो दुनियादार नहीं है, उस विश्व-वेदनासे व्यथित मानवको दुनियामें रहनेका क्या अधिकार है?

एक दूसरा चित्र

एक लेखक है, जो वक्ता भी है। शरीरसे सुन्दर, वाणीमें माधुर्य। आँखोंमें चपलता, कार्यमें कुशलता। पाँवोंमें स्फूर्ति, अँगुलियोंमें चुटकी। कला और साधना ऋषियोंकी थाथी है, हमें तो चाहिए पैसा। पैसा मिले इसी लिए लिखते हैं। लिखा कि टोली तैयार है, अखबारवाले मित्र हैं। व्यवसायी हैं तो विज्ञापनका बाजार गर्म है। सभा-सोसाइटी, चाय-पार्टी, मीटिङ्ग-वीटिङ्ग, गप-शपमें उन्हें सबके आगे देखा जा सकता है। दिखानेवाले साथ ही जो रहते हैं।

यों तादात्म्य किसी वस्तुसे नहीं, पर जा बैठें सबके ऊपर। पत्रिकाओंने छापा, नेताओंका आशीर्वाद मिला, वाणीकी कुशलताने कानोंको आनन्द दिया, रूप और आँखोंकी मोहकताने विश्वास दिलाया और यों मान लिए गये चोटीके कलाकार। नाम बढ़ा, यश मिला और धन भी घरमें आने लगा।

लेकिन?

लेकिन कौन जानता है भीतर क्या है! इतना नाम, यश और धन पल्ले पड़नेपर भी ऐसी कौन-सी शक्ति है जो भीतर ही भीतर चोट कर रही है, पीडित कर रही है। पर दूसरोंको ईससे क्या। इसे अपनी सुध है, दूसरोंकी हो तो हो। हीङ्ग लगे न फिटकरी रङ्ग चोखा लानेमें कुशल तो वे हैं ही। ऐसे ही आदमी तो होते हैं दुनियादार। हाँ, साहब इन्हें ही होता है अधिकार कि वे दुनियामें रहें।

परन्तु एक और है तीसरा चित्र

यह? यह कौन?

हाँ, यह आदमी है आदमी। यह न कलाकार है न दुनियादार। यह तो वह है जो कलाके पीछे पड़कर न दुनियासे दूर हटना चाहता है, न कुशलताका आश्रय लेकर दुनियामें रहना चाहता है। यह यशसे भागता है, पर वह उसके पीछे दौड़ता है। दुनियाको वह छोड़ना चाहता है, वह उसे नहीं छोड़ना चाहती। इसने विश्वके लिए अपनेको निर्मोही बना लिया है, पर उसके प्रति मोह बढ़ता जाता है। दुनियादारने पूछा, उत्तर मिला मैं कलाकार हूँ। कलाकारको उत्तर मिला कि वह दुनियादार है। लेकिन वह स्वयं कहता और जानता नहीं कि वह क्या है। बड़ा अजीब मामला है। और साधना?

साधना? साधना क्या? वह स्वयं नहीं जानता कि उसकी साधना क्या है। उसे अचरज है कि सब उसके पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हैं। कहता है कि मैं तो कुछ नहीं। किसीका उसे कुछ नहीं चाहिए सब तो छोड़े दे रहा है। लो यह फेंका, फेंक ही तो दिया।

लोगोंने कहा नहीं जी यह पक्का कलाकार है, पूरा साधक है। देखो न, कैसी सीधी पर चुभने वाली बातें करता है! क्या ऐसा-वैसा दुनियादार इतनी गहरी कह सकता है। यह जीवनका कलाकार है।

हाँ, है, होगा। पर?

पर उसके भीतरको कौन जान पाया है? उसने अब तक कहा, सुना तथा समझाया। माना किसीने नहीं। क्यों माने?

× × ×

चित्र प्रथम?—दुख, किन्तु स्वयंके लिए सुख।
चित्र द्वितीय?—सुख, किन्तु अन्तमें दुख।
चित्र तृतीय?—सुख-दुखकी आँख-मिचौनी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दीके दो नवीन महाकाव्य

(मुनि कान्तिसागर)

"मुझे जैनोंके प्रति कोई विशेष प्रकारका पक्षपात नहीं है क्योंकि मानवमात्र मेरे लिए समान है। मैं जैनकुलमें पैदा हुआ हूँ इससे कुछ मोह अवश्य है। अतः कहनेमें आ जाता है। हमारा जैनसमाज अपनी साम्प्रदायिक सीमाओंकी रक्षाके लिए प्रतिवर्ष पर्याप्त धन व्यय करता है। यदि उसमेंसे दशांश भी साहित्यिक कार्यमें या कोई जनकल्याण कार्य, स्थायी कार्योंमें व्यय करें तो कितना अच्छा हो ! भगवान महावीरकी सैद्धान्तिक प्रणालीके अनुसरण करने तक में हम पश्चात्पाद-से प्रतीत हो रहे हैं। हमारा प्राचीन साहित्य ऐसा है जिसपर न केवल, हम भारतीय ही, अपितु सारा संसार गर्व कर सकता है। जब वर्तमान जैनसाहित्यको देखते हैं तो मनमें बड़ी व्यथा होती है।"

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और कुछ अंशोंमें चिन्तक बाबू जैनेन्द्रकुमार जैन गत मास कलकत्ता जाते समय पटनामें ठहरे थे। उस समय आपने मेरे सम्मुख जैनसमाजकी दान-विषयक भीषण अव्यवस्थाका नग्न चित्र बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उपस्थित करते हुए उपर्युक्त शब्द कहे।

श्रीजैनेन्द्रजीके शब्दोंमें कितनी वेदना भरी हुई है। अखण्ड सत्य चमक रहा है। हम प्राचीनतापर फूले नहीं समाते, परन्तु वर्तमानपर लेशमात्र भी विचार तक नहीं करते जो वह भी एक दिन प्राचीन होकर रहेगा। अतः वर्तमान जैनसमाजपर साहित्यिक दृष्टिसे विचार करना अत्यन्त वांछनीय है। समाजको उच्च स्तरपर सामयिक साहित्य ही ले जा सकता है। प्रत्येक युग अपनी-अपनी समस्याएँ रखते हैं। इनकी उपेक्षा करना हमारे लिए घातक सिद्ध होगा। युवक-वर्ग क्या चाहता है यह प्रश्न साहित्य-निर्माताके सम्मुख रहना ही चाहिये। एवं जिस भाषाका युग होगा उसीमें उसे अपनी भाव-धारा मिला देनी होगी। युगके साथ रहना है तो नूतन साहित्य सृजन करना ही होगा जो मानसिक पौष्टिक खाद्यकी पूर्ति कर सके।

जैन साहित्यका अन्वेषण करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि जैन विद्वानोंने सदैव अपने विचारोंको रखनेमें सामयिक भाषाओंका अपनी कृतियोंमें बड़ी उदारतासे उपयोग किया है। यही कारण है कि आज प्रान्तीय भाषाओंका साहित्य-भण्डार जैनकृतियोंसे चमक रहा है। जैन विद्वद्भोग्य एवं लोकभोग्य साहित्यके सृष्टा थे। यदि स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया जाय कि "भारतीय भाषाओंके संरक्षण और विकासमें जैनोंने बहुत बड़ा योगदान किया है।" तो अत्युक्ति न होगी। परन्तु वर्तमानमें जैनसमाजका बहुत बड़ा भाग उपयुक्त परम्पराके परिपालनमें असमर्थ प्रमाणित हो रहा है अर्थात् वह राष्ट्रभाषा हिन्दीकी उपेक्षा कर रहा है। जिस समय जिस भाषाका प्रावल्य हो उसीमें प्रसारित सिद्धान्त ही सर्वग्राह्य हो सकते हैं। आज कहानी, उपन्यास और कविताकी चारों ओर धूम मची हुई है। गम्भीर साहित्यके पाठकोंकी संख्या अपेक्षाकृत अत्यल्प है। अतः क्यों नहीं उन्हींके द्वारा जैनसंस्कृतिके तत्वोंका प्रचार किया जाय। इससे दो लाभ होंगे—आम जनता जैनसंस्कृतिके हृदयको सरलतासे पहिचानेगी एवं हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि होगी। हमें प्रसन्नता है कि बनारससे श्रीयुत बालचन्द्र जैन आदि कुछेक उत्साही युवकोंने वैसा प्रयास चालू किया है। हम यहाँपर उन बन्धुओंका स्वागत करते हैं और भविष्यके लिए आशा करते हैं कि वे अपनी धाराको शुष्क न होने देंगे।

विहारके प्रथम पंक्तिके कवियोंमें कविसम्राट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर'का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण और उच्च है। आपकी समस्त रचनाओंपर हमें आलोचना लिखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उसपरसे हम कह सकते हैं कि दिनकरजीमें कल्पनाशक्ति और सूक्ष्मतम प्रतिभाका अद्भुत सामंजस्य है। भाषामें आवश्यक प्रवाह न होते हुए भी ओजको लिए है जो कविकी खास सम्पत्ति होती है। अभी आप विहार सरकारके डिप्टी डायरेक्टर ऑफ पब्लिसिटि हैं। अतः साहित्यिक साधना शिथिल गतिसे चलती है। बुद्धदेवपर आपने बहुत कुछ लिखा है। वह भी अधिकारपूर्ण! इन दिनों हमारा उनसे प्रायः मिलना होता ही रहता है। बातचीतके सिलसिलेमें यूहीं आपने एक दिन कहा—"भगवान बुद्धपर तो काव्य लिखे गये। गुप्तजीने बुद्ध, अल्ला—कल्लापर तो लिखा, परन्तु महावीरपर तो एक भी काव्य आज तक नहीं लिखा गया। यह भी एक आश्चर्य ही है। यदि कोई प्रयास करे तो क्या ही अच्छा हो ?" हमने कहा, "सबसे अच्छा तो यही होगा कि आप ही के द्वारा यह कार्य सम्पन्न हो। जब बुद्धपर आपने लिखा तो महावीरपर क्यों नहीं। वे भी तो आप ही के प्रान्तकी महान् विभूति थे ? अतः आपका कर्तव्य हो जाता है कि भारतीय संस्कृतिके अद्भुत प्रकाशस्तम्भस्वरूप वर्धमानपर श्रद्धाञ्जलिस्वरूपमें ही कुछ लिखें।"

जैनसमाजका सौभाग्य है कि दिनकरजीने श्रमण भगवान महावीरपर एक महाकाव्य लिखना स्वीकार कर लिया है। शीघ्र ही कार्यारम्भ होगा। दिनकरजी महावीरके ही वंशज हैं। अतः उनका कर्तव्य है। हम उनका हार्दिक स्वागत करते हैं और उनसे भविष्यके लिये आशा करते हैं कि जैनसंस्कृतिके उन तत्वोंको वे अपनी कविताका माध्यम बनावेंगे जिनका सम्बन्ध विहारसे है या था।

विहारके उदीयमान कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं—'अरुण,' जिनपर प्रान्तवासी मुग्ध हैं। वे सर्वोच्च कवियों द्वारा प्रशंसित हैं। स्वर्ण-सीता, मीरा-दर्शन-(दीपशिखाके तौरपर) विद्यापति आदि रचनाओंने जनताके हृदयपर बड़ा गहरा स्थान प्राप्त कर लिया है। आप अब भगवान महावीर और स्थविर स्थूलभद्र एवं गणिका कोशापर दो महाकाव्य प्रस्तुत करने जा रहे हैं। कल्पनामें नाविन्य और आध्यात्मिकता आपकी खास विशेषता है। आप चित्रकार होनेके कारण कुछ चित्रका भी निर्माण करेंगे। अरिष्टनेमिपर भी एक काव्य वे लिखना चाहते हैं, पर यह विचाराधीन है।

उपर्युक्त काव्य भले ही अजैन विद्वान् कवियों द्वारा निर्मित हों पर मेरा विश्वास है कि उनमें जैन-संस्कृतिके प्रति लेशमात्र भी अन्याय न होगा, तथा कथित कवियों द्वारा निर्माण करवानेका हमारा केवल इतना ही ध्येय है कि उनका विहारमें अपना स्वतन्त्र स्थान है और सार्वजनिकरूपमें इनकी रचनाएँ समादृत की जाती हैं अतः नवीन महाकाव्यों द्वारा जितना अच्छा व्यापक प्रचार होगा उतना शायद जैन कविकी रचनाका न हो, इसका अर्थ यह नहीं कि जैन कवियोंमें वह क्षमता नहीं जो जानतिक अभिरुचिको अपनी ओर आकृष्ट न कर सकें। परन्तु प्रासङ्गिक रूपमें इतना तो मुझे निःसंकोच भावसे कहना पड़ेगा कि ऐसे जैन विद्वान् कम हैं जिनके नाममात्रसे जनता प्रभावित हो। वैसी पृष्ठभूमि तैयार करना जरूरी है। श्रीवीरेन्द्र-कुमार उपर्युक्त पंक्तियोंके अपवाद हैं। मैंने देखा जनतामें उनकी रचनाकी बड़ी प्रतीक्षा रहती है। उनमें प्रतिभा है।

हम तो और प्रान्तीय जैन जनतासे अनुरोध करेंगे कि वे अपने प्रान्तके प्रसिद्ध कवि, औपन्यासिक और कहानीकारोंको जैन साहित्य अध्ययनके लिये देकर उनसे जैन संस्कृतिपर प्रकाश डालनेवाला साहित्य तैयार करवाया जाय तो बहुत बड़ा काम होगा।

पटना, ता० १०–१०–१९४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मथुरा-संग्रहालयकी महत्त्वपूर्ण जैन पुरातत्त्व-सामग्री

(श्रीबालचन्द्र जैन एम० ए०, संग्रहाध्यक्ष 'जैनसंग्रहालय सोनागिर')

मथुराका महत्त्व

पुरातन कालमें मथुरा और उसके आसपास हिन्दू, जैन और बौद्ध तीनों धर्मोंकी त्रिवेणी बहती थी। जनतापर तीनों धर्मोंके विचारों और मान्यताओं-का अच्छा प्रभाव था और उनके केन्द्र-स्थानोंकी स्थितिसे विदित होता है कि उस समय तीनों धर्मोंके माननेवाले पारस्परिक विद्वेषसे परे थे। वर्तमान खुदाईसे यह स्पष्ट ज्ञात हो गया है कि मथुरा केन्द्र आपसी द्वेष और कलहके कारण नष्ट नहीं हुआ था बल्कि किसी भयङ्कर विदेशी आक्रमणकी बर्बरता और उनकी तहसनहस नीतिका शिकार बनकर ही यह भूगर्तवासी बन गया। मथुराकी संस्कृति और वहाँके पुरातत्त्वको नष्ट करनेवाली जाति हूण थी जो अपनी बर्बरता और असंस्कृतपनेके लिए प्रसिद्ध है। उनसे भी जो कुछ बचा रहा वह मूर्तिपूजाके विरोधी मुसलमानोंकी आँखोंसे न बच सका और अन्ततोगत्वा मथुराकी वह कला सदाके लिए विलीन हो गई।

जैन इतिहासमें मथुराका एक ही स्थान है। दिगम्बर सम्प्रदायका तो यह गढ़ था, प्राचीन आगमों और सिद्धान्तग्रन्थोंकी भाषा मथुराकी शौरसेनी प्राकृत ही है; अनेक विहार और श्रमणसंघ मथुरा-क्षेत्रमें स्वपरकल्याणमें प्रवृत्त थे। प्राचीनतम जैन मूर्तियाँ मथुरासे ही प्राप्त हुई हैं। और जितनी अधिक संख्यामें सुन्दर और कलापूर्ण मूर्तियाँ और शिल्प यहाँके कङ्काली टीलेकी खुदाईमें प्राप्त हुए हैं उतने किसी भी अन्य स्थानसे प्राप्त नहीं हुए।

प्राप्त लेखों और आयागपट्टोंपर बनी हुई प्रतिकृति-से यह प्रमाणित हो गया है कि ईसासे दूसरी शती पूर्व मथुरामें एक विशाल जैन स्तूप था जो बौद्ध स्तूपोंकी भाँति सुन्दर वेदिका, तोरण आदिसे सुसज्जित था। इस विशाल स्तूपके उल्लेखसे अब इसमें शङ्काको कोई स्थान नहीं रह जाता कि प्राचीनकालमें जैनोंमें भी स्तूपों और चैत्योंकी पूजाका प्रचलन था।

मथुरा-कला

मथुराकी जैनकला बौद्धकलाकी भाँति ही कुषाण और गुप्त राजाओंके समयमें क्रमशः विकसित होती गई। इन दोनों युगोंकी जैन और बौद्ध मूर्तियों एवं अन्य शिल्पके लक्षणमें कोई विशेष अन्तर न था। सही बात तो यह है कि कला कभी किसी सम्प्रदाय-विशेषके नामसे विकसित हुई ही नहीं। इस लिए जैनधर्म या सम्प्रदायके नामपर कलाका विभाजन करना उचित नहीं प्रतीत होता। कलाका विकास कालके अनुसार होता है। और जो मूर्ति या मन्दिर जिस कालमें निर्मित होते हैं उनपर उस कालका प्रभाव अवश्य रहता है चाहे वे जैन हों या बौद्ध या अन्य कोई। यही कारण है कि जैन और बौद्ध स्तूपोंके तोरण, वेदिका आदिमें समानता है।

डाक्टर बूलरका मत है:—

"The early art of the Jains did not differ materially from that of the Buddhists. Indeed art was never communal. Both sects used the same ornaments, the same artistic motives and the same sacred symbols, differences occuring chiefly in minor points only. The cause of this agreement is in all probobility not that adherents of one sect immitated those of the others, but that both drew on the national art of India and employed the same artists."

Epigraphia Indica Vol.II Page 322.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कङ्काली टीलेसे प्राप्त वेदिकास्तम्भ आदिकी निर्माणकला बौद्धस्तूपोंके वेदिका-स्तम्भों आदिकी कलाके ही जोड़की है। प्राचीनतामें भी जैनकला बौद्धकलासे पिछड़ी नहीं है यह कङ्काली टीलासे प्राप्त लेखोंमें जैनस्तूपके उल्लेखसे प्रमाणित हो जाता है।

कुषाणोंके राज्यकालमें ही मथुराकी कलाका प्रभाव चारों कोनोंमें फैल गया था। सारनाथ, कौशाम्बी, सांची आदि स्थानोंसे मूर्तियोंकी मांग आती थी और मथुरा उसकी पूर्ति करता था। अन्य स्थानोंके तक्षक और मूर्तिनिर्माता इन्हीं मूर्तियोंके आधारपर स्थानीय शैलीकी मूर्तियोंका निर्माण करते थे। मथुरामें गढ़ी गई मूर्तियाँ और शिल्प लाल चित्तेदार पत्थरकी होती थीं जो यहाँ बहुतायतसे मिलता है। यद्यपि यहाँकी कला सांची और भरहुतकी देशी कलाके साथ ही साथ कुछ अंशोंमें गांधारकी कलासे भी प्रभावित थी। तो भी मथुराकी कलामें पूर्ण मौलिकता है।

कुषाण-कालकी मूर्तियाँ चौड़े चेहरे, चिपटी नाक और स्थूल कायकी विशेषताओंसे गुप्तकालकी मूर्तियोंसे सरलतासे पृथक् की जा सकती हैं जिनके गोल चेहरे और नुकीली नाकमें सौन्दर्य भर दिया गया है। गुप्त-कालकी मूर्तियाँ विशेष आकर्षक और प्रभावक हैं। इस कालमें मूर्तिनिर्माणकला अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी थी। कुषाण-कालमें जो प्रभामण्डल अत्यन्त सादे बनाए जाते थे, इस कालमें वे अत्यन्त अलंकृत बनाए जाने लगे थे और उनमें हस्तिनख मणिबन्ध, तथा अनेक बेलबूटे भरे जाते थे। कुषाण-युगकी मूर्तियोंका सिर प्रायः मुण्डितमस्तक होता था पर गुप्त-युगमें छल्लेदार बालोंकी रचना और भी भली लगती है। यह अन्तर मथुरा संग्रहालयके कुषाणकालीन सिर नं० बी ७८ और गुप्तकालीन सिर नं० बी ६१में तथा कुषाणकालीन मूर्ति नं० बी २, बी ६३ और गुप्तकालीन मूर्ति नं० बी १, बी ६ आदिमें स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है।

खुदाईका इतिहास

मथुराके कङ्काली टीलेकी खुदाई सर्वप्रथम सन् १८७१में श्रीकनिंघमने की और इस खुदाईमें उन्हें अनेक तीर्थङ्कर मूर्तियाँ—जिनपर कुषाणवंशी प्रतापी सम्राट् कनिष्कके ५वें वर्षसे वासुदेवके ९८वें वर्ष तकके लेख खुदे थे—मिलीं। दूसरी खुदाई १८८८-९१में विस्तृतरूपसे डाक्टर फ्यूररने की और इसमें उन्होंने ७३७ मूर्तियाँ तथा अन्य शिल्प खोद निकाले। वे सब आज भी लखनऊ संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। इसके पश्चात् पं० राधाकृष्णजीने भी कङ्काली टीलेकी खुदाई की और अनेक प्रकारकी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त की।

इस प्रकार कङ्काली टीला जैन सामग्रीके लिए खदान सिद्ध हुआ है। लखनऊ संग्रहालय इसी सामग्रीसे सजा हुआ है। पीछेकी सामग्री मथुरा संग्रहालयमें सुरक्षित है और वहाँ सैकड़ों मूर्तियाँ और लेख विद्यमान हैं। उन्हींमेंसे कुछेकका संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जाएगा।

आयागपट्ट(क्यू२)

संग्रहालयकी दरीची नं० २ (Court B)के दक्षिणी भागमें एक वर्गाकार शिलापट्ट प्रदर्शित है, इसपर एक स्तूप तोरणद्वार और वेदिकाओं सहित बना हुआ है। पट्टपर खुदे हुए लेखसे विदित होता है कि इस प्रकारके शिलापट्टोंको आयागपट्ट कहा जाता था और ये पूजाके काममें लाए जाते थे। यह अनुमान किया जाता है कि उक्त आयागपट्टपर उत्कीर्ण तोरण और वेदिका-मण्डित स्तूप मथुराके विशाल जैनस्तूपकी प्रतिकृति है जो ईसासे दूसरी शती पूर्व स्थित था।

प्रस्तुत आयागपट्टपर एक लेख खुदा हुआ है जिसके अनुसार वृद्ध गणिका लवणशोभिकाकी पुत्री और श्रमणोंकी श्राविका वसु नामक एक वेश्याने इसे दानमें दिया था। लेखकी लिपि ई० पू० पहली शतीकी है और मूल लेख निम्न प्रकार है:—

१. *नमो अरहतो वर्धमानस आरामे गनिका*
२. *ये लोणशोभिकाये धितु शमणसाविकाये*
३. *नादाए गणिकाए वासु (यु) आरहातो देविक-(उ) ल*
४. *आयामसभा प्रपा शिलाप (तो) पतिस्थापिता निगथा*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. *नां अरह (ता) यतने स (हा) मातरे भगिनीये धिताए पुत्रेण*

६. *सर्वेन च परिजनेन अरहतपूजाये*

इसी प्रकारके और भी अनेक आयागपट्ट मथुराकी खुदाईमें प्राप्त हुए हैं । नं० २५६३ भी एक आयागपट्टिका है जो शक सं० २१में दान की गई थी। क्यू ३ भी आयागपट्ट ही है। इसके सिवाय अनेक आयागपट्ट लखनऊके प्रान्तीय संग्रहालयमें सुरक्षित हैं।

नैगमेष मूर्तियां

दरीची नं० ३ (Court C)के दक्षिणी भागमें नं० ई १. ई २ और २५४७ नं०की तीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। ये कुषाणकालीन हैं और इनके मुख बकरेके आकारके हैं । ये नैगमेष हैं और जैन मान्यताके अनुसार सन्तानोत्पत्तिके देवता हैं। इनके हाथोंमें या कन्धोंपर खेलते हुए बच्चे चित्रित किए गए हैं। प्रस्तुत मूर्तियोंमें नं० ई २ नैगमेषका स्त्रीरूप है और ई १ तथा २५४७ पुरुषरूप।

मध्यकालमें जैन लोग सन्तानोत्पत्तिके लिए एक नए प्रकारकी मूर्तियोंकी स्थापना और पूजा करने लगे थे। इनमें जैन यक्ष और यक्षिणी कल्पवृक्षके नीचे विराजमान अङ्कित किए जाते थे। दरीची नं० ४ (Court D) दक्षिणी भागकी २७८ नं०की मूर्ति इस प्रकारकी मूर्तियोंका नमूना है।

देवियोंकी मूर्तियां

मथुरा संग्रहालयके षट्कोण गृह नं० ४में ब्राह्मण धर्मकी अनेक मूर्तियोंके साथ दो जैन देवियोंकी मूर्तियाँ भी प्रदर्शित हैं । इनमें डी ७ बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथकी यक्षिणी अम्बिका है। इसके बाईं जंघापर गोदमें बालक है और नीचे इसका वाहन सिंह उत्कीर्ण है। ऊपर ध्यानस्थ नेमिनाथके दोनों ओर वैजयन्ती धारण किए वासुदेव कृष्ण और हलधारी बलरामकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। देवी लीलासनमें स्थित है और हार करधौनी आदि अनेक आभूषण धारण किए हुए है। बालकके गलेमें भी कण्ठी है।

नं० डी ६ ऋषभदेवकी यक्षिणी चक्रेश्वरीकी मूर्ति है। इसके आठ हाथ हैं और आठोंमें चक्र है। इसका वाहन गरुड है जो नीचे दिखाया गया है। ऊपर ऋषभनाथकी पद्मासन ध्यानस्थ मूर्ति है।

ये दोनों मूर्तियाँ मध्यकालकी हैं और कङ्काली टीलेसे प्राप्त हुई हैं।

सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएं

मथुरा संग्रहालयमें अनेक सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओंमें चारों ओर एक-एक तीर्थङ्करकी मूर्ति बनी है। चारों ओरसे दर्शन होने तथा चारों ओरसे कल्याणकारी होनेसे इन प्रतिमाओंको 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका' कहा जाता था । इनपर खुदे हुए लेखोंमें भी यही नाम मिला है। इस प्रकारकी कुषाणकालीन प्रतिमाएँ अधिकतर खड़ी होती हैं। नं० बी ७० एक ऐसी ही मूर्ति है जो सं० ३५में दान की गई थी। अन्य मूर्तियोंमें भी लेख हैं। नं० बी ७१ संवत् ५ (ई० ८३)की है। सर्वतोभद्रिकाओंके कुषाणकालीन अन्य नमूने बी ६७-६८ आदि हैं। पीछेकी सर्वतोभद्रिकाओंके नमूने बी ६६ आदि हैं जो उत्तर गुप्तकालकी हैं। नं० बी ६६में चारों ओर चार तीर्थङ्कर पद्मासन और ध्यानमुद्रामें स्थित हैं। इसका ऊपरी भाग खण्डित है।

तीर्थङ्करोंकी प्रतिमाएं

यद्यपि कङ्काली टीलेसे प्राप्त उत्तमोत्तम मूर्तियाँ लखनऊके प्रान्तीय संग्रहालयमें ले जाई गई हैं फिर भी मथुरा संग्रहालयमें अनेक सुन्दर और कलापूर्ण तथा विभिन्न शैलीकी तीर्थङ्कर मूर्तियाँ अभी भी सुरक्षित हैं। स्थानकी कमीसे उनमेंसे मुख्य मुख्य ही प्रदर्शन मन्दिरमें सजाई गई हैं, अन्य सब गोदामोंमें भरी पड़ी हैं।

मथुरासे प्राप्त तीर्थङ्कर मूर्तियाँ सबकी सब दिगम्बर सम्प्रदायकी हैं । नग्न होनेके कारण ये बुद्धमूर्तियोंसे सहज ही अलग पहचानी जा सकती हैं। पद्मासन मूर्तियाँ श्रीवत्स चिह्नसे पहचान ली जाती हैं। पहचाननेका एक और साधन है, वह यह कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धके मस्तकपर उष्णीष होता है और जैन तीर्थङ्करोंकी मूर्तियोंमें इसका अभाव है।

मूर्ति-निर्माणकी दृष्टिसे हम मथुरा कलाको त्रिधा विभाजित कर सकते हैं:—

(१) *कुषाणकालीन कला*—कुषाणकालकी जैन मूर्तियोंमें समयके प्रभावकी वही सब विशेषताएँ हैं जो बुद्ध मूर्तियोंमें हैं। इस समयकी जैन मूर्तियाँ खड्गासन और पद्मासन दोनों आसनोंमें पाई जाती हैं और उनमेंसे अधिकांश अभिलिखित हैं। नं० बी २-३-४-६३ आदि पद्मासन और बी ३५-३६ आदि खड्गासनके नमूने हैं।

बी २ कुषाण राजा वासुदेवके राज्यकालमें शक सं० ८३में जिन-दासी द्वारा दान की गई थी। बी ४ तीर्थङ्कर ऋषभदेवकी अभिलिखित प्रतिमा है और उसपर लिखा गया मूल लेख इस प्रकार है:—

१. *सिद्धं महाराजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य (शाही) वासुदेवस्य राज्यसंवत्सरे ८० (+)४ ग्रीष्ममासे द्वि २*
२. *दि ५ एतस्य पूर्वाया भट्टदत्तस्य उगनिदकस्य वधुये···स्य कुटुबिनीये गुत्त···कुमार (द) त्तस्य निर्वर्तन*
३. *भगवतो अरहतो रिषभदेवस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता धरसहस्य कुटुबिनीये·····················*

इस लेखमें महाराज वासुदेवकी सभी राजकीय उपाधियों तथा संवत् ८४में भगवान अर्हत् ऋषभदेवकी प्रतिमा प्रतिष्ठित किए जानेका उल्लेख है।

नं० ४९० वर्धमान स्वामीकी प्रतिमा थी जिसकी चौकी मात्र अवशिष्ट रह गई है। इसे संवत् ८४ (१६२ ई०)में दमित्रकी पुत्री ओखरिका आदिने दानमें दिया था। मूल लेख इस प्रकार है:—

१. *सिद्धं स ८० (+) ४ व ३ दि २० (+) ५ एतस्य पूर्वाया दमित्रस्य धितु ओख*
२. *रिकाये कुटुबिनीये दत्ताये दीनं वर्धमान प्रतिमा*
३. *गणातो कोट्टियातो·························*

बी ६३ पद्मासन मूर्ति है और इसमें चौकीपर धर्मचक्रकी पूजाका दृश्य है। तीर्थङ्करके दोनों ओर दो पार्श्वचर हैं, पीछे छायामण्डल और छातीपर श्रीवत्साङ्क है। कुषाणकलाका यह सुन्दर उदाहरण है। बी १२ ऋषभदेवकी प्रतिमा है और इसपर उनका चिह्न बैल उत्कीर्ण है।

(२) *गुप्तकालीन कला*—भारतीय कलाके इतिहासमें गुप्तयुग स्वर्णयुग माना जाता है। इस युगमें आकर कला पूर्ण विकसित होचकी थी और भाव-प्रदर्शन उसका मुख्य लक्ष्य हो गया था। इस कालमें बनी मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर सुडौल समानुपात और प्रभावकतापूर्ण हैं। सारनाथकी धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रामें स्थित बुद्धमूर्ति और मथुराकी भिक्षु यशदिन्न द्वारा दान की गई अभयमुद्रामें खड़ी बुद्धमूर्ति (नं० ए ५) इसी कालकी देन हैं।

जैन मूर्तियोंमेंसे मथुरा संग्रहालयकी नं० बी १की मूर्ति विशेष महत्त्वकी है जो दरीची नं० २ (Court B) दक्षिणी भागमें अनेक मूर्तियोंके साथ प्रदर्शित है। इसमें एक तीर्थङ्कर उत्थित पद्मासनमें समाधिमुद्रामें बैठे हैं। उनकी दृष्टि नासिकाके कोणपर जमी हुई है, जो जैन शास्त्रोंमें ध्यानका आवश्यक अङ्ग बताया गया है। पीछे हस्तिनख, मणिबन्ध और अनेक प्रकारके बेलबूटोंसे अलंकृत प्रभामण्डल है जो गुप्तकालकी विशेषता है। यह मूर्ति मथुरासे प्राप्त तीर्थङ्कर मूर्तियोंमें कला और प्रभावशीलतामें सर्वोत्कृष्ट है। उत्थित पद्मासन एक कठिन आसन माना गया है और यह उसका उदाहरण है।

मूर्ति संख्या बी ६-७-३३ गुप्तकालीन कलाके अन्य नमूने हैं। बी ३३ खड्गासन मूर्ति है जिसके नीचे और ऊपरका भाग टूट गया है, सिर्फ धड़ बाकी है। तीर्थङ्करके दोनों ओर दो पार्श्वचर (?) कमलपर खड़े हैं और पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। नं० बी ६-७ पद्मासन और ध्यान मुद्राकी मूर्तियाँ हैं और ऋषभनाथकी हैं। इनके कन्धोंपर बाल लटक रहे हैं जो ऋषभनाथका विशेष चिह्न है। दोनों मूर्तियोंमें दोनों ओर पार्श्वचर हैं और पीछे पूर्ववत् बेलबूटोंसे अलंकृत प्रभामण्डल भी है।

वैसे तो इस कालकी और भी अनेकों मूर्तियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संग्रहालयमें प्रदर्शित हैं पर उनमेंसे बी २० और सर्पफणयुक्त पार्श्वनाथ (१५०५)के साथ ही साथ २६८, ४८८ नं०की भी दृष्टव्य हैं।

(३) *उत्तरगुप्त और मध्यकालकी कला*—जहाँ गुप्तकाल अपनी सरल-भावव्यंजनाके लिये प्रसिद्ध है वहीं मध्यकाल कृत्रिम अलंकरण और सजावटके लिये ध्यान देनें योग्य है। इस कालकी बनी मूर्तियोंमें वह स्वाभाविकता नहीं रही जो गुप्त कालके तक्षकों की छैनीसे निसृत हुई थी।

मथुरा संग्रहालयकी १५०४ नं० की ऋषभनाथकी मूर्ति उत्तरगुप्त कालकी है। इसका आसन बहुत सुन्दर है और मस्तकपर तीन छत्र तथा पीछे प्रभामंडल है। ऊपर पंच जिन हैं। नं० बी ६६ उत्तरगुप्त कालकी सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है जिसका उल्लेख पहिलेसे किया जा चुका है।

अन्य मूर्तियोंमें बी ७७ सुन्दर अलंकृत आसन पर ध्यानमुद्रामें स्थित तीर्थंकर नेमिनाथकी मूर्ति है। इसकी चौकीपर शंख चिन्ह, ऊपर छत्र तथा पीछे प्रभामंडल हैं। नं० बी ७५ कमलाकार प्रभामंडल और हरिण चिन्ह युक्त शान्तिनाथकी मूर्ति है। बरामदेमें रखी २७३८ नं० पद्मासन मूर्ति भी इसी कालकी है।

तीर्थङ्कर मूर्तियोंके सिर

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंके सिर उष्णीषहीन होनेसे बुद्धसिरोंसे अलग किये जा सकते हैं। मथुरा संग्रहालयमें इस प्रकारके सिरोंकी संख्या कम नहीं है और वहाँ कुषाण और गुप्त दोनों कालोंके मूर्तिसिर प्रदर्शित हैं।

षटकोण गृह नं० १ सिरोंका प्रदर्शनगृह है। यहाँ अनेक बुद्ध, बोधिसत्व और हिन्दू देवताओंके सिरोंके साथ ही जैन तीर्थङ्करोंके सिर भी दीवारके सहारे एक कतारमें सजे हुये हैं। नं० बी ७८ किसी तीर्थङ्करका कुषाण कालीन सिर है, चौड़ा चेहरा चपटी नाक और मुंडित मस्तक इसके प्रमाण हैं। नं० बी ४५ गुप्तकालीन सिर है यह उसके घुंघराले बाल, गोल चेहरे आदिसे जाना जा सकता है। नं० बी ५१ में लहरिया केश हैं और भ्रूमध्यमें ऊर्णा चिन्ह बना हुआ है।

सबसे अधिक महत्वका है नं० बी ६१ जो षट्कोण गृह नं० ३ के बीचोबीच चबूतरेपर सजा हुआ है। यह किसी विशाल मूर्तिका सिर है और इसकी ऊँचाई २ फुट ४ इंच है। मूर्तिनिर्माणकलाका यह अद्वितीय नमूना है। यह गुप्तकालीन है और मथुराके चित्तीदार लाल पत्थरका बना हुआ है।

बाहर बरामदेमें भी सिर प्रदर्शित हैं जो कम महत्वके हैं। बी ४४ किसी तीर्थङ्करका कद्दावर सिर है और बी ६२ तीर्थङ्कर पार्श्वनाथका षट्फण युक्त सिर है जो दृष्टव्य हैं। ये दोनों कुषाणकालीन हैं।

सिरोंकी बनावटके अन्य दो और प्रकार प्रतिमा नं० ४८८ और प्रतिमा नं० २६८ में भी लक्षित किये जा सकते हैं।

उपसंहार

इसके अतिरिक्त कंकाली टीलेसे प्राप्त अन्य शिल्प, मिट्टीके खिलौने, वेदीका स्तम्भ, तोरणोंके अंश आदि भी उक्त संग्रहालयमें प्रदर्शित हैं। और इस प्रकार मथुरा संग्रहालयने जैन कलाका संरक्षण और वैज्ञानिकरूपेण प्रदर्शन करके जैनसमाजपर भारी उपकार किया है।

संग्रहालयके क्यूरेटर श्रीकृष्णदत्तवाजपेयी सब क्यूरेटर श्रीचतुर्वेदी अत्यन्त सरलप्रकृति और मिलनसार व्यक्ति हैं। जैन पुरातत्त्वमें आप दोनोंकी विशेष रुचि है और हमारे लिये प्रसन्नताकी बात है।

अंतमें मैं जैनसमाजके कलापारखियों और पुरातत्त्व प्रेमियोंसे अनुरोध करूंगा कि वे ऐसी योजना बनायें जिससे यहाँ वहाँ बिखरे पुरातत्त्वकी रक्षा हो सके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

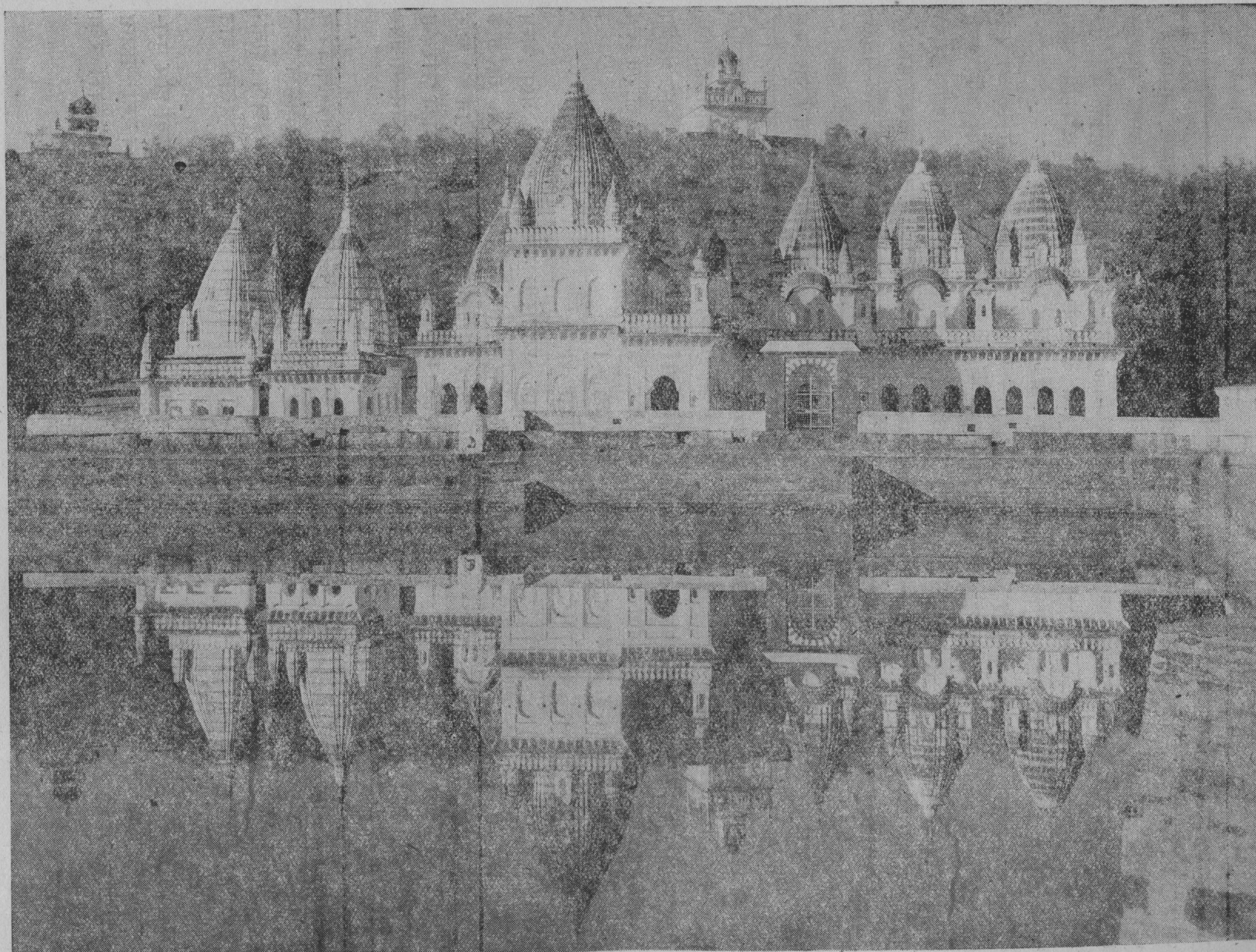

अतिशयक्षेत्र श्रीकुण्डलपुरजीके जलमन्दिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज - सेवकोंके पत्र—

जैनधर्मभूषण ब्र० सीतलप्रसादजीके पत्र

[हमारे यहाँ तीर्थङ्करोंका पूरा प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं, आचार्योंके कार्य-कलापकी तालिका नहीं। जैन-सङ्घके लोकोपयोगी कार्योंकी कोई सूची नहीं। जैन राजाओं, मन्त्रियों, सेनानायकोंके बलपराक्रम और शासन-प्रणालीका कोई लेखा नहीं, साहित्यिकोंका कोई परिचय नहीं। और तो और हमारी आँखोंके सामने कल-परसों गुज़रनेवाले—दयाचन्द गोयलीय, बाबू देवकुमार, जुगमन्दरदास जज़, वैरिस्टर चम्पतराय, ब्र. सीतलप्रसाद, बाबू सूरजभान, अर्जुनलाल सेठी आदि विभूतियोंका ज़िक्र नहीं, और ये जो हमारे दो-चार बड़े-बूढ़े मौतकी चौखटपर खड़े हैं, इनसे भी हमने इनकी विपदाओं और अनुभवोंको नहीं सुना है और शायद भविष्यमें एक पीढ़ीमें जन्म लेकर मरजानेवालों तकके लिये उल्लेख करनेका हमारे समाजको उत्साह नहीं होगा।

आचार्योंने इतने ग्रन्थ-निर्माण किये, परन्तु अपने गुरुका जीवन-चरित्र न लिखा। खारवेल, अमोघ-वर्ष जैसे जैनसम्राटोंके सम्बन्धमें उनके समकालीन आचार्योंने एक भी पंक्ति नहीं लिखी। चार-पाँच स्मारकग्रन्थ लिखने वाले ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीसे अपनी आत्म-कथा नहीं लिखी गई। स्वर्गीय आत्माओंकी इस उपेक्षाकी चर्चा करके हम धृष्टता जैसा पाप नहीं करना चाहते। परन्तु दुःख तो जब होता है जब कि जीवित महानुभावोंसे निवेदन किया जाता है कि आपके उदर-गह्वरमें जो सामाजिक संस्मरण छुपे पड़े हैं उन्हें दया करके बाहर फेंक दें। परन्तु सुनवाई नहीं होती। कौन ग्रन्थ पुराना है, फलाँ श्लोक शुद्ध है या अशुद्ध, निब रोज़ाना कितना घिसता है, इनकी ओर तो सतत् प्रयत्न होता है, परन्तु समाजके इतिहासकी ओर ध्यान नहीं है।

अतः हमने सोचा है कि इतिहास सम्बन्धी जो भी बात हमारे हाथ आये, उसे हम तत्काल प्रकाशित कर दें। इतिहासके लिये पत्रोंका भी बड़ा महत्व है। उर्दू-साहित्यमें ऐसे पत्रोंके कितने ही सङ्कलन पुस्तकाकार छप चुके हैं। हम भी 'अनेकान्त'में यह स्तम्भ जारी कर रहे हैं।

जैन साहित्योद्धारका मूककार्य करनेवाले दिल्लीके भाई पन्नालालजीके पास अनेक कार्यकर्ताओंके हजारों पत्र सुरक्षित हैं। मेरी अभिलाषानुसार उन्होंने ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीके पत्रोंका सार लिखकर भेजा है।

यह सब पत्र भाई पन्नालालजीको लिखे हुए हैं। ब्रह्मचारीजीने अपने प्रत्येक पत्रमें उन्हें 'भाई साहब' और 'प्रतिदर्शन' लिखा है। हस्ताक्षरमें अपने नामके साथ 'हितैषी' लिखा है। अतः पत्रसे इतना अंश हमने अलग कर दिया है। पत्रमें ब्रह्मचारीजी तारीख और मास तो लिखते थे, परन्तु सन् नहीं लिखते थे। अतः पोष्ट आफ़िसकी मुहरमें जहाँ सन् पढ़ा गया है साथमें लिख दिया गया है। ब्रह्मचारीजीके पत्र न साहित्यिक हैं न रोचक। फिर भी उनमें जैन समाजके लिये कितनी लगन और चाह थी यह ध्वनित प्रत्येक पत्रसे होता है।

—गोयलीय]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१) दाहोद (पंचमहाल)
जैनपाठशाला १९–१०

भाई जौहरीमलजीको धर्मस्नेह कहें

(२) प्रभाचन्द शास्त्री सुना है—यहाँ नौकरी की है वह धर्मको न त्यागे इसपर ध्यान—

(३) देहलीमें एक जैनबोर्डिङ्गकी बड़ी जरूरत है इसका प्रयत्न करावें।

(५) कर्मानन्दजीका क्या हाल है।

सर्वसे धर्मस्नेह कहें।

(२) हिसार, महावीरप्रसाद वकील
६–११–३६

वैरिस्टर चम्पतराय क्या देहली आयेंगे, कब तक किस दिन किस समय आवेंगे, ठीक पता हो तो लिखें। व, वे देहलीमें कहाँ ठहरेंगे।

मैं १४ या १५ को यहाँसे चलूँगा यदि अवसर हो तो मिलता जाऊँगा।

(३) श्राविकाश्रम, तारदेव
बम्बई ३–११

मैं १५ दिनसे बीमार था। अब ठीक हूँ। जूता पाया। नाप ठीक हुई, आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। क्या देहलीमें बो० की कोई तजवीज है।

सर्राफसे व सबसे धर्मप्रेम कहें।

(४) २४–१०

मेर पुस्तक मिली पढ़कर यदि कामताप्रसाद चाहेंगे तो भेज देंगे। लेख निकल गया होगा।

जैनगजट अङ्क ४३ अभी आया नहीं आप सूरत से मँगा लें व वहीं कहींसे देख लें।

उपजातिविवाह आन्दोलनको जोर देना चाहिये।

(५) वर्धा, २२–३–२७

यदि बैरिस्टर साहब तैयार हैं तो मंडलकी ओरसे उन्हींको गुरुकुलके उत्सवमें भेजिये। यदि मुझे भेजना हो तो नियत तिथि होनी चाहिये व एक जैनी रसोईके लिये साथ चाहिये तथा उनकी स्वीकारता आपके ही द्वारा आनी चाहिये।

(६) वर्धा C/o जमनालाल बजाज
१२–११–२७

ट्रैक्ट नं० ४८ किस विषयका—आप एक कोई इतिहास मुझे भेजिये जो वर्तमान पठनक्रममें चलता हो मैं देखकर उत्तर लिख भेजूँगा उसे आप मंजूर करावें फिर दूसरी पुस्तकको भेजें या प्रोफेसर हीरालालजी कर सकते हैं।

(७) वर्धा, सेठ जमनालाल बजाज
२–११–२७

कार्ड पाया मैं ता० १८ नवम्बर तक यहाँसे बाहर नहीं जा सकता हूं इसलिये आप पं० जुगलकिशोरजी-को बुला लेवें या बाबू न्यामतसिंहजी हिसारको।

जौहरीमलजीका पता क्या है धर्मस्नेह कहें।

(८) खंडवा, २५–१०–२७

मैं अस्वस्थ हूँ चिन्ता की बात नहीं है। जयन्ती पर आनेके सम्बन्धमें अभी कुछ नहीं कह सकता हूं। अबके वर्ष आप तीनों दिन भाई चम्पतरायजीको सभापति बनावें व उनका बढ़िया छपा हुआ भाषण करावें व बाँटें। चम्पतरायजीसे काम लेना चाहिये नहीं तो वे फिर वकालतमें फँस जावेंगे।

यदि लाला लाजपतरायसे कुछ जैनमतकी प्रशंसा पर कहला सकें तो बहुत प्रभाव हो।

(९) खंडवा, १५–१०–२७

पत्र पाया व पुस्तकें पाईं। नागपुर भेजा बहुत अच्छा किया उर्दू पुस्तकें पहले मिली थीं। आप खूब धर्मप्रचार करें। मेरा लिखा ट्रैक्ट यह अशुद्ध छपा है क्योंकि मेरे अक्षर सिवाय सूरतवालोंके और कोई पढ़ नहीं सका। यदि आप कोई हिन्दी ट्रैक्ट चाहते हों तो मैं लिख सकता हूं पर आप कमेटीसे पास करालें कि वह सूरत ही शीघ्र छपे तो मैं लिखूँ पं० मथुरादासको समझाकर बोलपुर शान्तिनिकेतन भिजवावें वहाँ बहुत जरूरत है अधिक वेतनका लोभ न करें यहाँ उनकी भी योग्यता बढ़ेगी उनका जवाब लेकर लिखना।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

(१०)   खंडवा, १–१०–२७

जैनकलाके सुधारके लिये ब्रह्मचारी कुँवर दिग्विजयसिंह नागपुरमें उद्यम कर रहे हैं पता–परवार दि० जैनमन्दिर इतवारी बाजार। कुछ पुस्तकें हिन्दीकी बाँटनेको भेजें। सनातन जैन १० प्रति जिनेन्द्रमत-दर्पण १० प्रति अन्य हिन्दीके उपयोगी ट्रैक्ट ५–५ फिर जो वे मँगावें भेजते रहें। ५ सनातन जैन मुझे भेज दें।

(११)   २९–३–२७

प्रूफ व कापी मामनचन्द प्रेमीके द्वारा भेजी है मिले होंगे। लेख मेरे पास है मैं लाहौर अहिक्षेत्र होकर जाता हूं। पता–बलवंतराय बैङ्कर पुरानी अनारकली लाहौर।

उर्दूके कुछ ट्रैक्ट भेंटरूप धर्मस्वरूप, कर्ताखंडन आदिके एक-एक मेलके दो-दो ५ व ७ प्रकारके भेज दें लिख दें बाँट दें।

ला० प्रभुराम जैन मास्टर गवर्नमेंट स्कूल महाम जिला रोहतक पता पूछा है कुछ नहीं जानते जरूर भेजें।

(१२)   ४–२–२७

ट्रैक्ट पाये लाला लाजपतरायकी पुस्तकपर नोट मैंने पहले उनको भेजे थे। अब वह पुस्तक मेरे पास नहीं है यदि वह बदलना स्वीकार करें, आप उनसे मिलें तो पुस्तक भिजवा दें। मैं फिर नोट लिखकर भेज दूंगा।

सनातनजैनमत सूरतमें ही छपवाना वह हमारे अक्षर पढ़ सकेंगे।

(१३)   कटक, १९–३–२४

ला कमेटीका क्या काम होरहा है। अहिंसा धर्मके दो ट्रैक्ट भेज देना मेरे नाम C/o सेठ जोखीराम मूँगराज १७३ हरीसनरोड कलकत्ता ज़रूरत है।

(१४)   बम्बई, श्राविकाश्रम जुबलीबाग तारदेव २७–११–२७

आपके पत्र ता० १६। १८–११ के पाए।

(१) प्राचीनस्मारककी प्रतियाँ लागतके मूल्यमें सूरतसे प्राप्त होंगी मुफ्त नहीं।

(२) माईदयाल वाला ट्रैक्ट नहीं मिला।

(३) सत्यार्थप्रकाशका खंडन लिखकर लाला देवीसहाय फीरोजपुरको भेजा है। वे पं० माणकचन्द न्यायाचार्यको दिखाकर सत्यार्थदर्पणमें बढ़ाकर छापेंगे पंडित माणकचन्दका देखना काफी होगा हर एकके दिखलानेसे पुस्तक बिगड़ जाती है। ऋषभदास का खंडन सूरजभानको दिखाकर छापें।

सनातनजैनपत्र मिला होगा प्रचार करें सत्यको प्रकट किये बिना काम नहीं चल सकता था इससे उद्यम किया है। नवयुवकोंको मदद देनी चाहिये।

(१५)   सूरत, १–३–२५

कार्ड ता० २९ का पाया

मुझे श्रीमहावीरजी चौदसको सवेरे जाना है इसलिये मैं तेरसको ७ अप्रैलको रातको ९॥ बजेकी गाड़ीसे महावीरजी जाना चाहता हूं। बस यदि मेरा व्याख्यान उस समयके भीतर होसके तो मैं आनेको तैयार हूं इसी आशयका तार आपको किया है। निराकुलता रहे इससे सफरखर्चकी बात भी लिख दी है आप जवाब जरूर देना यदि उपयोग न हो तो भी जवाब देना जिससे मैं न आनेके लिये निश्चित होजाऊँ। अर्जुनलाल सेठीजीका भाषण बहुत मर्यादामें होना चाहिये वे ऐसी ऐसी बातें कह जाते हैं कि अस्पृश्यों-को मूर्ति स्पर्श कराई जावे सो कोई जैन सुननेको तैयार नहीं है। इससे उनका भाषण व भगवानदीनका भाषण विचारे हुए शब्दोंमें होना चाहिये जिससे शान्ति रहे क्षोभ न रहे जल्सा आप दिनमें शुरू करें वही चलता रहे।

पुराने लोगोंको साथ लेकर अपना काम बनाना ठीक होगा।

(१६)   ७–७–२६

(१) इटलीकी कापी पढ़ी लौटाते हैं सब श्वेताम्बर ग्रन्थ हैं।

(२) हमारा एक बढ़िया लेक्चर जैनगजट मदरासमें निकल रहा है। दो अङ्कमें निकल चुका है शेष और निकलेगा उसे आप ट्रैक्टरूप छपवा लें बहुत ही उपयोगी पड़ेगा। मार्च व मईमें निकला है।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

(३) चम्पतरायजीका वास्तवमें भले प्रकार सम्मान करना चाहिये। पदवी मेरी रायमें नीचे लिखेमेंसे हो।

(१) जैनसिद्धान्तरत्नाकर (२) जैनतीर्थोद्धारक
(३) जैनतत्त्वसागर (४) जैनधर्मकुमदेन्दु
(५) जैनबोधमार्तण्ड (६) जैनदर्शन सूर्य

ए० सी० बोसका लेक्चर भी छपवा लें ट्रैक्टमें

(४) आगामी जयन्तीमें ऐसे अजैन विद्वानोंको सभापति करें जो हरएक जल्सेमें हाजिर हो कार्यवाई करे यदि महर्षि शिवव्रतलाल रह सकें तो ठीक अन्यथा मि० बोस ही सभापति रहें।

लैक्चरर—

ऋषभदास वकील—मस्तराम एम० ए० लाहौर, प्रो० हीरालाल एम० ए० अमरावती, कस्तूरचन्द जैन वकील जबलपुर, पं० दरबारीलाल इन्दौर, पं० माणिकचन्दजी, पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थ, रतनलाल वकील बिजनौर, वर्णी गणेशप्रसादजी, फनीभूषण अधिकारी बनारस, विंध्यभूषण भट्टाचार्य शान्तिनिकेतन, बोलपुर बङ्गाल आदि विद्वानोंको बुलावें।

उत्साहपूर्वक ट्रैक्टोंको खूब बाँटें। धर्मका प्रचार करें। काममें शिथिलता न करें। पहाड़ी हाई स्कूल की रक्षा करावें। देहलीमें जैनबोर्डिङ्ग करावें।

(१८) ७-१२-२६

आपके सब ट्रैक्ट व सैंससका उतारा पाया मैं यथाशक्ति आनेकी कोशिश करूँगा अजितप्रशादजीको १५-२० दिन पहले लिखना अभी वे हाँ नहीं करेंगे मैं एक ट्रैक्ट "हमारा सनातन जैनमत" लिखना चाहता हूँ इसीपर व्याख्यान दूंगा उसको आप छपवाकर बँटवा सकें तो मैं लिखनेका कष्ट उठाऊँ। ४० पृष्ठके करीब होगा उत्तर दीजियेगा।

चन्द्रकुमार शास्त्री, कुँवरलाल शास्त्री, दरबारीलालजी, जुगलकिशोरजी, बनवारीलाल मेरठ आदि को बुलावें तथा आप जितने बड़े-बड़े अजैन विद्वानों को जानते हैं उनसे message मँगावें। काम उत्साह से करें। धर्मकी महिमा प्रगटे सो उपाय करें।

(१९) लखनऊ, ४-१०-२६

१—जैनगजटकी खबरका खण्डन किसी बड़े आदमीके नामसे छपवावें।

२—रिलीजन ऑफ इम्पायर पुस्तकमें क्या जैनधर्मका कुछ विशेष हाल लिखा है यदि हो तो आप पढ़ने भेज दीजियेगा।

३—गोम्मटसार जीवकांड करीब आधा छप गया है। १ मासके अनुमानमें शायद पूर्ण होजायगा फिर कर्मकांड १ तिहाई तर्जुमा हुआ है सो छपेगा फिर और ग्रन्थ मि० जैनीका तर्जुमा उन्हींके खर्चसे छप रहा है।

४—सेठ हुकमचन्दके विरोधमें एक बड़ी सभा देहली आदि कहीं होकर विजातीय विवाहकी पुष्टिमें प्रस्ताव सब पञ्चायतमें जावें। सभापति प्यारेलाल वकीलके समान कोई व्यक्ति हो। आप ट्रैक्टका तो प्रचार करते रहें।

(२०) लखनऊ, १-९-२६

१—सूचनायें सूरत भेजी जाचुकी हैं।

२—कविता पूजाकी करना बहुत कठिन काम है अजितप्रसाद वकील कर सकते हैं यदि परिश्रम करें।

३—पूजामें भूमिका ठीक करनेकी जरूरत है उस में तेरह-पंथकी रीति दी है चाहिये दोनों रीति देना। हमने शब्द व शब्द बाँचा नहीं तथापि तर्जुमा ठीक होगा वारिस्टर साहबका काम है।

(२१) वर्धा, १५-३-२६

आज लेख मुक्ति व उसके साधनपर भेजा है सदुपयोग करें व सूरतमें ही छपावें बड़ी मेहनतसे लिखा है।

यदि मेरे बुलानेका विचार हो जयन्तीपर तो सम्मति करके बुलावें व पूर्ववत् सम्मानसे बिठालें व भाषण अपने विषयपर दिलावें यदि राय न पड़े तो कभी न बुलावें आपका जल्सा निर्विघ्न हो सो करें। एक दिन २ घण्टे विशेष पूजा सब मिलकर करें। उत्सवके साथ जिसे अजैन भी देखें। मंडपमें श्रीजीको विराजमान करके करें फिर पूजाके पीछे वहीं पहुँचा देवें। पहुँच देवें लेखकी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्मृतिकी रेखाएँ——

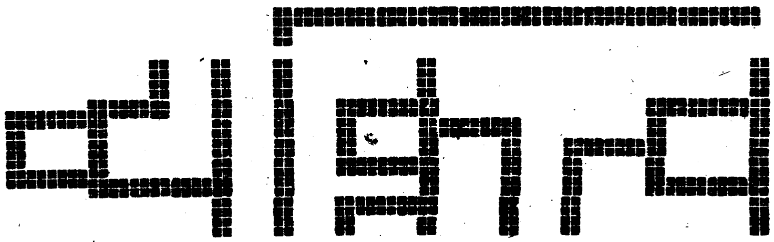

(लेखक— अयोध्याप्रसाद गोयलीय)

[८वीं किरणका शेष]

सन् १९३१में गान्धी-अरविन समझौतेके अनुसार प्रायः सभी राजनैतिक बन्दी छोड़ दिये गये। परन्तु मेरे भाग्यमें इन ख़ैराती होटलोंके स्वादिष्ट भोजनकी रेखाएँ शेष थीं, इसलिये एक वर्षके लिये और रोक लिया गया। लेकिन खाली बैठा तो दामाद भी भारी हो उठता है। इस तरह डण्ड पेल-पेलकर रोटियाँ तोड़ना अधिकारीवर्गको कबतक सुहाता ? मजबूरन उन्होंने मियाँवाली जेलमें चालान कर दिया; क्योंकि यहाँ भी राजनैतिक बन्दी रोक लिये गये थे।

मियाँवाली जेलका तो ज़िक्र ही क्या, मियाँवाली ज़िलेमें बदली होते सुनकर बड़े-बड़े ऑफ़िसर काँप उठते हैं। कोई भूल या अपराध किये जानेपर प्रायश्चित्तस्वरूप ही उनका यहाँ ट्रांसफर होता है। रेतीलाप्रदेश, अधिकाधिक गर्मी-सर्दी, अस्सी-अस्सी घण्टेकी लगातार आँधी, पानीकी कमी, मनोरञ्जनका अभाव, क्रूर और मूर्ख जङ्गली लोगोंका इलाका हर-एकको रास नहीं आता। ज़रा-ज़रासी बातपर खून हो जाना यहाँ आम रिवाज है। बादशाही ज़मानेमें जिन हत्यारों और पापियोंको देश निकालेकी सज़ा दी जाती थी। वह इसी प्रदेशमें छोड़ दिये जाते थे। उन्हीं अपराधियोंके वंशज यहाँके मूल निवासी हैं। अब तो यह प्रदेश पाकिस्तानमें चला गया है और बिना पासपोर्टके देखना असम्भव होगया है। भाग्य ही अच्छे थे जो इस समयकी विलायतकी बिना हलद-फिटकरी लगे उस वक्त ज़ियारत नसीब हो सकी।

मियाँवाली जेलमें तीन राजनैतिक बन्दी पहलेसे ही मौजूद थे चार हम पहुँच गये। सातों एक ही छोटेसे कमरेमें ज़मीनपर कम्बल बिछाकर सोते थे।

अभी हमें पहुंचे दो-तीन घण्टे ही हुए थे कि देखा कि दो सिक्ख पटापट ततैये मार रहे हैं। परस्पर होड़-सी लगी हुई थी। कमरेमें आने वाले ततैयोंको उछल-उछलकर क़हकहे लगा लगाकर मार रहे थे। मैं उनकी इस हरक़तसे हैरान था कि गान्धीजीके सैनिक यह कौन-सा अहिंसा-यज्ञ कर रहे हैं ? अभी एक-दूसरेसे परिचित भी न हो पाये थे। उनकी इस संहार-लीलापर क्या कहा जाय ? यह मैं सोच ही रहा था कि मेरे साथ आये पाण्डेय चन्द्रिकाप्रसादसे न रहा गया और वे आवेश भरे स्वरमें बोले—सरदारजी, यदि आपको दया-धर्म छू नहीं गया है तो अपने साथी जैन साहबकी मनोव्यथाका तो ध्यान रखना था ! आप क्या नहीं समझते कि आपके इस काण्डसे इनको कितनी वेदना हो रही होगी ? इतना सुनते ही एक सरदारजी तो तत्काल अपनी भूल समझ गये और ततैयेकी हत्या बन्द करके मुझसे क्षमा-याचना कर ली। यह सरदार साहब मास्टर काबुलसिंह थे ! जो ७-८ वर्षसे जेल-जीवन बिता रहे थे और आजकल पञ्जाब असेम्बलीके सदस्य हैं। बड़े सहृदय, तपस्वी और उच्च विचारोंके राष्ट्रवादी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिक्ख हैं। किन्तु दूसरे सरदारजी न माने और कड़ककर बोले—"तो क्या हम जैन साहबकी वजहसे शर्त हार जाएँ। ततैयोंने हमें काटा तो हमने भी प्रतिज्ञा कर ली कि १०० ततैये मार कर ही दम लेंगे। हममेंसे जो पहले १०० मार लेगा वही शर्त जीतेगा। अगर जैन साहबको काट ले तो क्या यह नहीं मारेंगे? अगर ये न मारें तो हम भी मारना छोड़ सकते हैं।"

अब मेरी बन आई! मैंने कहा—"जब मैं उनके सतानेकी भावना नहीं रखूँगा. तब वे मुझे हरगिज़ नहीं काटेंगे। और यदि वह आपके धोखेमें मुझे काट भी लें तब भी मैं उन्हें नहीं मारूँगा। अगर मारूँ तो तुम फिर ततैये मारनेमें स्वतन्त्र रहोगे। फिर तुम्हें कोई नहीं रोकेगा।" आश्चर्यकी बात यह हुई कि मक्खियोंकी तरह अधिक संख्यामें उड़ने वाले उन ततैयोंने मुझे नहीं काटा और मेरी पत रख ली, इस बातका उन सरदारजीपर बड़ा असर हुआ किन्तु दुख है कि अधिक गर्मी बर्दाश्त न होनेके कारण १०-१५ रोज़में ही उन्हें उन्माद हो गया और हमसे पृथक् कर दिये गये।

राजनैतिक बन्दियोंके विचारोंकी थाह लेनेके लिये जेलमें सी. आई. डी. के आदमी भी सत्याग्रह आन्दोलनमें सजा लेकर आजाते थे। यह लोग कितना गहरा काटते हैं यह तो किसी और प्रसङ्गमें लिखा जायगा। यहाँ तो केवल इतना लिखना है कि एक ऐसे छद्मवेषी सज्जन हमारे पास और भेज दिये गये। ये हजरत एक रोज़ सिविलसर्जनसे स्वास्थ्य-लाभके नामपर गोश्त और अण्डोंकी माँग कर बैठे। डाक्टरने कहा—आपका यह खान-पान जैन साहबको अखरेगा तो नहीं।

नहीं. "मैंने इनसे इजाज़त ले ली है।"

मैं यह सुनकर कि कर्तव्य विमूढ़ हो गया, यह कहूँ कि मुझसे क़तई नहीं पूछा तो साथी झूठा बनता है, राजनैतिक बन्दियोंकी शानमें फ़र्क आता है और चुप रहता हूँ, तो यह सब देखा कैसे जायगा? मैं कुछ निश्चय कर भी न पाया था कि सिविलसर्जन क्षुब्ध हो उठे और बोले—"सरदारजी, झूठ बोलते शर्म आनी चाहिये, एक जैन मांस-अण्डे खानेकी इजाज़त देगा यह नामुमकिन है। यह बात कहकर जैन साहबका तुमने दिल दुखाया है, इसके लिये उनसे माफ़ी माँगो।"

६

मियाँवाली जेलमें रहते हुए जब १५-२० रोज़ होगये। तब एक रोज़ तीसरा साथी मुहम्मद शरीफ बोला—

"लालाजी, क्या आप सचमुच जैन हैं?"

"जी, इसमें भी क्या शक है?"

"मुझे तो यक़ीन नहीं आता, कि आप जैन हैं, आप तो बहुत अच्छे इन्सान मालूम होते हैं।"

"तो क्या जैन इन्सान नहीं होते?"

"खुदा-क़सम पाधाजी (एक बन्दी जो रिहा हो गये थे) अक्सर कहा करते थे, जैनियोंकी परछाँईसे बचना, यह इन्सानका खून चूस लेते हैं। मैं तो खयाल करता था कि यह लोग बनमानुषकी क़िस्मके लोग होते होंगे और इन्हें किसी अजायबघरमें देखूँगा। मगर जब आप यहाँ तशरीफ़ लाये और मालूम हुआ कि आप जैन हैं तो मैं फौरन घबरा कर कमरेसे बाहर आगया था। और आपने महसूस किया होगा कि ४-५ रोज़ मैं आपसे बचा-बचासा रहता था। आपके साथीसे आपकी तारीफ़ सुनकर यक़ीन नहीं आया था। जब आपको इतने नज़दीकसे देखा है तब भरम दूर हुआ है।"

मैंने कहा—"पाधाजीने ग़लत नहीं कहा, उनको किसी जैनने सताया होगा, तभी उनकी ऐसी धारणा बनी होगी। एक मछली सारे तालाबको गन्दा कर देती है।"

७

मियाँवाली जेलमें अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास, भगतसिंह और हरिसिंह रह चुके थे, सौभाग्यसे उन्हीं बैरिकों और कोठरियोंमें मुझे भी रहनेका अवसर मिला। ४-५ माह बाद ४ नज़रबन्द बङ्गाली और आगये। जो हमसे सर्वथा दूर और गुप्त रखे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये। किन्तु पता उनके आनेसे पहले ही हमें चल गया और हममेंसे एक साथीका जेलमें उनसे पत्र द्वारा विचारोंका आदान-प्रदान होने लगा। साथी सी० आई० डी०के संकेतपर एक पत्र जेलवालोंमे पकड़ लिया और उससे बड़ी खलबली मच गई। उस वक्त मैं और एक वे पत्र व्यवहार करने वाले साथी दो ही जेलमें थे। पत्र पकड़े जाते ही उन्हें अन्यत्र भेज दिया और मुझे फाँसीकी १० नं० कोठरीमें इसलिये भेज दिया कि मैं घबराकर सब भेद खोल दूं। इस १० नं० की कोठरीमें फाँसीकी सजा पाने वाला वही व्यक्ति एक रात रखा जाता था जिसे प्रातः फाँसी देनी होती थी ! ९ कोठरियोंमें बन्द मृत्युकी सजा पाये हुए बन्दियोंका करुण क्रन्दन नींद हराम कर देता था ऐसा मालूम होता था कि श्मशानभूमिमें बैठे धू-धू जलती चिताओंको देख रहा हूँ। ३-४ रोज बन्द रहने पर जब अधिकारियोंको विश्वास होगया, मारे भयके अब सब उगल देगा तो कलकृर जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के साथ मेरे पास आया। मैं उस वक्त कोठरीके बाहर बैठा चरखा कात रहा था। वे मुझसे बिना बोले मुआयनेके बहाने मेरी कोठरीमें गये और किसी काम लायक कॉगजकी खोजके लिये मेरी किताबोंको इस तरह देखने लगे जैसे लाइब्रेरीमें पुस्तकोंको यूँहीं उलट-पलटकर देखा जाता है। फिर बोलनेका बहाना ढूँढ कर कलकृर बोले—"अच्छा तो आप दीवाने ग़ालिब समझ लेते हैं।"

"जी, समझा तो नहीं हूँ, समझनेकी बेकार कोशिश करता रहता हूँ।"

"आप तो जैन हैं न ?"

"जी।"

"भई, सुना है जैन झूठ नहीं बोलते !"

मैं उनका मतलब ताड़ गया। यदि वास्तविक घटना बतलाता हूँ तो एक साथी मुसीबतमें फँसता है, मेरे दामनपर देशद्रोहका दाग़ लगता है। इसलिये बातको बचाकर बोला—"बेशक, जैन कोई ऐसी बात नहीं कहते जिससे किसीका दिल दुखे या कोई संकट में फँसे।"

"बेशक, जैनियोंकी ऐसी ही तारीफ़ सुनी है !" फिर वह इधर-उधर की बात करके बोले—"क्यों भई जैन साहब, वह बात आखिर क्या थी ?"

"जी, कौनसी ?"

"भई वही, तुम तो बिल्कुल अजान बनते हो ?" मेरे होंटसे सूख गये, मैं थूकको निगलता हुआ फिर बोला—"मैं आपकी बातोंको क़तई नहीं समझा।"

"जैनसाहब, सच-सच कह दो हम तुम्हें यकीन दिलाते हैं तुमपर ज़रा भी आँच न आयेगी। जैन होकर झूठ न बोलो।"

"मुझे अफ़सोस है कि मेरे कारण आपको हमारी जातिपरसे विश्वास उठ रहा है। मैं आपको क़सम खाकर यक़ीन दिलाता हूँ कि झूठ बोलना तो दर-किनार, जिससे किसीका दिल दुखे हम ऐसा एक भी शब्द नहीं बोलते ?"

कलकृर खुद अपने जालमें फँस गया था वह क्या बात चलाये लाचार मुँह लटकाये चला गया। कोई भेद न मिलनेके कारण जब वे मेरे साथी रिहा कर दिये गये तब १ माह बाद मेरी सज़ा पूरी होनेपर उन्हें मुझको भी छोड़ना पड़ा।

सी० आई० डी० सुपरिन्टेन्डेन्ट और जेल सुपरिन्टेन्डेन्टने काफी तरकीबें लड़ाई पर सफलता न मिली।

१७ नवम्बर सन् १९४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य-परिचय और समालोचन

१ भारतीय संस्कृति और अहिंसा—मूल लेखक, स्व० धर्मानन्द कोसम्बी। अनुवादक, पं० विश्वनाथ दामोदर शोलापुरकर। प्रकाशक, हिन्दीग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय बम्बई। मूल्य, दो रुपया।

प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् स्व० कोसम्बीजीने यह पुस्तक मराठीमें 'हिन्दू संस्कृति आणि अहिंसा' नाम से लिखी थी। उसीका यह हिन्दी संस्करण है, जिसे हिन्दी भाषाभाषियोंके लाभार्थ हिन्दी-साहित्यके प्रसिद्ध सेवी और प्रकाशक पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने स्वर्गीय पुत्र हेमचन्द्रकी स्मृतिमें हिन्दीग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयद्वारा प्रकाशित किया है और जो हेमचन्द्रमोदी-पुस्तकमालाका प्रथम पुष्प है।

प्रस्तुत पुस्तकमें भारतकी प्राचीन वैदिक, श्रमण और पौराणिक इन तीन संस्कृतियों, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों, विविध मतों, अनेक मतप्रवर्तकों, राजनैतिक घटनाओं आदिपर ऐतिहासिक और स्वतन्त्र नई दृष्टि-से विचार किया गया है। साथ ही पाश्चात्य संस्कृति और उसकी सामाजिक व्यवस्थापर प्रकाश डालते हुए भारतीय सामाजिक क्रान्ति और महात्मा गांधीकी राजनीति, साम्राज्यके गुण-दोषोंपर विचार करके अहिंसाका प्राचीन और अर्वाचीन तुलनात्मक स्वरूप बतलाया है। अतएव पुस्तकको वैदिक-संस्कृति, श्रमणसंस्कृति, पौराणिक-संस्कृति, पाश्चात्य-संस्कृति तथा संस्कृति और अहिंसा इन पाँच मुख्य विभागों—अध्यायोंमें रखा गया है। लेखकने अपने विशाल अध्ययन और कल्पनाके आधारपर जहाँ इसमें कितना ही स्पष्ट स्वतन्त्र विचार किया है वहाँ अनेक बातोंकी तीव्र आलोचना भी की है। जैनोंके ऋषभदेव आदि २२ तीर्थङ्करोंके चरित, उनके शरीरकी ऊँचाई और जैन साधुसंघोंकी बृहद्रूपता आदिपर भी संदेह व्यक्त किया है और उन्हें काल्पनिक बतलाया है। पुस्तकके 'अवलोकन' (प्रस्तावना) में उसके लेखक पं० सुखलालजीने उनके इस सन्देहका उचित समाधान कर दिया है। अतः उस सम्बन्धमें यहाँ लिखना अनावश्यक है। लेखकने जो एक खास बातका उल्लेख किया है वह यह है कि जैन-तीर्थङ्कर पार्श्वके पहले अहिंसासे भरा हुआ तत्त्वज्ञान नहीं था—उन्होंने उसका उपदेश सुसम्बद्धरूपमें दिया था। लिखा है—

"पार्श्वका धर्म बिल्कुल सीधा सादा था। हिंसा असत्य, स्तेय तथा परिग्रह इन चार बातोंके त्याग करनेका वह उपदेश देते थे। इतने प्राचीनकालमें अहिंसाको इतना सुसम्बद्धरूप देनेका यह पहला ही उदाहरण है।

× × तात्पर्य यह है कि पार्श्वके पहले पृथ्वीपर सच्ची अहिंसासे भरा हुआ धर्म या तत्त्वज्ञान था ही नहीं।

पार्श्व मुनिने एक और भी बात की। उन्होंने अहिंसाको सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीनों नियमोंके साथ जकड़ दिया। इस कारण पहले जो अहिंसा ऋषि-मुनियोंके आचरण तक ही थी और जनताके व्यवहारमें जिसका कोई स्थान न था, वह अब इन नियमोंके सम्बन्धसे सामाजिक एवं व्यावहारिक होगई।

पार्श्वमुनिने तीसरी बात यह की कि अपने नवीन धर्मके प्रचारके लिये उन्होंने संघ बनाये। बौद्ध साहित्यसे इस बातका पता लगता है कि बुद्धके समय जो संघ विद्यमान थे उन सबोंमें जैन-साधु और साध्वियोंका संघ सबसे बड़ा था।"

पुस्तक नई दिशामें लिखी गई है और नये विचारोंको लिये हुए है। अतः कितने ही पाठकोंके क्षोभका कारण बन सकती है। पर संशोधक और गुणज्ञ तटस्थ विचारकोंके लिये नूतन और निर्भीक स्पष्ट विचार करनेकी एक नवीन दिशा प्रदर्शित करती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। हिन्दी-साहित्यमें ऐसी पुस्तकको प्रस्तुत करनेके लिये लेखक और प्रकाशक दोनों धन्यवादार्ह हैं। छपाई-सफाई सब सुन्दर है।

२. भाग्य-फल (भाग्य-प्रकाशक-मार्त्तण्ड)—लेखक, पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, न्याय-ज्योतिषतीर्थ साहित्यरत्न। प्रकाशक और प्राप्तिस्थान कान्तकुटीर, आरा। मूल्य सजिल्द १॥=) और अजिल्द १॥)।

हरेक व्यक्ति यह जाननेके लिये उत्सुक होता है कि मेरा भाग्यफल कैसा है? मुझे कब और क्या हानि-लाभ तथा सुख-दुख होगा? विद्वान् लेखकने इस पुस्तकद्वारा इन्हीं सब बातोंपर अपने प्रशंसनीय ज्योतिषज्ञानका प्रकाश डाला है। इसमें वैशाखसे प्रारम्भ करके चैत्र तक बारह महीनोंमें उत्पन्न हुए पुरुषों और स्त्रियोंका तिथि तथा दिनवार फलादेश (शुभाशुभ फलका प्रदर्शन) प्रस्तुत किया है। पुस्तक भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिर्विदोंके विविध ग्रन्थों तथा प्राचीन और अर्वाचीन विचारोंके आधारसे लिखी गई है। भाषा सरल और चालू है। हिन्दी साहित्यके भण्डारमें ऐसी अच्छी भेंट उपस्थित करनेके लिये लेखक अवश्य ही अभिनन्दनके योग्य हैं। हम उनकी इस सत्कृतिका समादर करते हुए पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्तकको जरूर मँगाकर पढ़ें और अपने फलाफलको ज्ञात करें।

३. सम्राट् खारवेल—लेखक, जयन्तीप्रसाद जैन साहित्यरत्न। प्रकाशक और प्राप्तिस्थान, नवयुग जैन साहित्य-मन्दिर खतौली। मूल्य १।)।

यह एक नाटक-ग्रन्थ है जिसमें जम्बूकुमार (अन्तिम केवली जम्बूस्वामी), अञ्जन मुक्तियज्ञ और सम्राट् खारवेल ये चार नाटक निबद्ध हैं। इनमें सम्राट् खारवेल अन्य नाटकोंसे बड़ा है और इस लिये उसकी प्रधानतासे पुस्तकका नाम भी सम्राट् खारवेल रखा गया जान पड़ता है। नाटक सभी भावपूर्ण और शिक्षाप्रद हैं। शब्द और भाव दोनोंका विन्यास अच्छा है। लेखकका यह प्रथम प्रयास सराहनीय है और पुस्तक प्रचारके योग्य है।

४. जैनधर्मपर लोकमत—संग्राहक और प्रकाशक, 'स्वतन्त्र' सूरत। मूल्य, जैनधर्म प्रचार।

इसमें महात्मा गान्धीसे लेकर राजगोपालाचार्य तक लगभग पचपन भारतीय और पाश्चात्य उच्च-कोटिके विद्वानोंके जैनधर्मपर प्रकट किये गये मतों-विचारोंका सङ्कलन किया गया है। पुस्तक संग्रहणीय तथा प्रचारके योग्य है।

५. विश्वविभूति-स्वर्गारोहः—(श्री गान्धी-गुणगीताञ्जलिः) लेखक, मुनि श्रीन्यायविजय। प्रकाशक, श्री केशवलाल मङ्गलचन्द शाह पाटण (गुजरात)। मूल्य कुछ नहीं।

प्रस्तुत छोटी-सी १६ पद्यात्मक रचना मुनि न्याय-विजयजीने गान्धीजीके स्वर्गारोहणपर संस्कृतमें रची है और गुजराती अनुवादको लिये हुए है। रचना ललित और सरल है।

६. वस्तुविज्ञानसार—प्रवक्ता, अध्यात्मयोगी श्रीकानजी स्वामी। हिन्दी-अनुवाक, पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ। प्रकाशक, श्रीजैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ (काठियावाड़)। मूल्य, कुछ नहीं।

यह श्रीकानजी स्वामीके गुजरातीमें दिये गये आध्यात्मिक प्रवचनोंका महत्वपूर्ण संग्रह है। इसमें अनन्त पुरुषार्थ, आत्मस्वरूपकी यथार्थ समझ, उपा-दान-निमित्त आदि सात विषयोंपर अच्छा विवेचन किया गया है। स्वाध्याय-प्रेमियोंके लिये पुस्तक पठ-नीय और संग्रहणीय है।

७. सत्य हरिश्चन्द्र—रचयिता, मुनि श्रीअमर-चन्द्र कविरत्न। प्रकाशक, सन्मतिज्ञानपीठ आगरा। मूल्य १॥)।

सत्य हरिश्चन्द्र भारतीय इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। गाँव-गाँवमें और नगर-नगरमें उनकी गुण-गाथा गाई जाती है। उन्होंने सत्यके लिये स्त्री, पुत्र और अपना तन भी उत्सर्ग कर दिया था और भारतके पुरातन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्ज्वल आदर्शको उन्नत किया था। मुनिजीने हिन्दी पद्योंमें उन्हींकी बड़े सुन्दर ढङ्गसे गुण-गाथा गाई है। पुस्तक अच्छी बन पड़ी है और लोकरुचिके अनुकूल है। भाषा और भाव सरल तथा हृदयग्राही हैं।

८. **सामायिकसूत्र**—लेखक, उक्त उपाध्याय मुनि श्रीअमरचन्द कविरत्न, प्रकाशक, सन्मतिज्ञान-पीठ आगरा। मूल्य ३॥)।

मुनिजीने इसमें सामायिकके सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन किया है और अपनी स्थानकवासी परम्परानुसार सामायिकसूत्रोंका सङ्कलन और सरल हिन्दी व्याख्यान दिया है। पुस्तकके मुख्य तीन विभाग हैं। पहले-प्रवचन विभागमें विश्व क्या है. चैतन्य, मनुष्य और मनुष्यत्व, सामायिकका शब्दार्थ आदि सामायिकसे सम्बन्ध रखनेवाले कोई २७ विषयोंपर विवेचन है। दूसरे 'सामायिकसूत्र'में नमस्कारसूत्र आदि ११ सूत्रोंका अर्थ है और अन्तिम तीसरे विभागमें परिशिष्ट है, जिनकी संख्या पाँच हैं। ग्रन्थके प्रारम्भमें पं० बेचरदासजीका विद्वत्तापूर्ण 'अन्तदर्शन' (भूमिका) है। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओंके सामायिकोंपर भी संक्षेपमें प्रकाश डाला है। दिगम्बर परम्पराके आचार्य अमितगतिका सामायिकपाठ भी अपने हिन्दी अर्थके साथ दिया है। पुस्तक योग्यतापूर्ण और सुन्दर निर्मित हुई है। भाषा और भाव दोनों और आकर्षक हैं। सफाई-छपाई अच्छी है। लेखक और प्रकाशक दोनों इसके लिये धन्यवादके पात्र हैं।

९. **कल्याणमन्दिर-स्तोत्र**—लेखक और प्रकाशक, उपर्युक्त मुनिजी तथा पीठ। मूल्य ॥)।

कल्याणमन्दिर-स्तोत्र जैनोंकी तीनों परम्पराओंमें मान्य है। यह स्तोत्र बड़ा ही भावपूर्ण और हृदयग्राही है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका हिन्दी अनुवाद है। ग्रन्थके आरम्भमें मुनिजीने इसे सिद्धसेन दिवाकरकी कृति बतलाई है जो युक्तियुक्त नहीं है। यह दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्रकी रचना है. जैसा कि ग्रन्थके अन्तमें 'जननयनकुमुदचन्द्र' इत्यादि पदके द्वारा सूचित भी किया गया है। मुनिजीका यह अनुवाद भी प्रायः अच्छा और सरल हुआ है। पं० बनारसीदासजीका भाषा कल्याणमन्दिर-स्तोत्र भी इसके साथमें निबद्ध है।

१० **श्रीचतुर्विंशति-जिनस्तुति(वृत्ति सहित)**-लेखक, विद्यावारिधि श्रीसुन्दरगणि। प्रकाशक, श्री-हिन्दीजैनागम-प्रकाशक-सुमतिकार्यालय, जैन-प्रेस कोटा (राजपूताना)। मूल्य ।)।

इसमें ऋषभादि चौबीस जैन तीर्थङ्करोंकी संस्कृत भाषामें गणीजीने स्तुति की है और स्वयं उसकी संस्कृत वृत्ति भी लिखी है। पुस्तक उपादेय है।

११. **श्रीभावारिवारण-पादपूर्त्यादिस्तोत्र संग्रह**-संग्राहक और संशोधक मुनिविनयसागर। प्रकाशक, उक्त जैनप्रेस कोटा। मूल्य भेंट।

इस संग्रहमें तीन छोटे-छोटे सवृत्ति स्तोत्रोंका संकलन है। पहला समसंस्कृत और अन्य दोनों संस्कृत भाषामें हैं। प्रथम भावारिवारणपादपूर्ति और दूसरे पार्श्वनाथलघुस्तोत्र तथा दोनोंकी वृत्तियोंके रचयिता वाचनाचार्य श्रीपद्मराजगणि हैं। और तीसरी 'सवृत्ति जिनस्तुति' रचनाके कर्ता श्रीजिनभुवनहिताचार्य हैं। तीनों रचनाएँ प्रायः अच्छी हैं।

१२. **चतुर्विंशति - जिनेन्द्रस्तवन**—रचयिता, वाचनाचार्य श्रीपुण्यशील गणी। प्रकाशक, उपर्युक्त प्रेस कोटा। मूल्य भेंट।

नाना रागों और रागनियोंमें रची गई यह एक संस्कृतप्रधान रचना है। इसके कुछ स्तवनोंमें देशियोंका भी उपयोग किया गया है। इस रचनामें कुल २५ स्तवन हैं। २४ तो चौबीस तीर्थङ्करोंके हैं और अन्तिम सामान्यतः जिनेन्द्रका स्तवन है। लेखकका उद्देश्य लोकरुचि-प्रदर्शनका रहा है। पुस्तक ग्राह्य है।

—कोठिया।

१३. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीनरत्न**— लेखक, गोपालदास जीवाभाई पटेल। अनुवादक पंडित शोभाचन्द्र भारिल्ल। प्रकाशक. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ संख्या १४२। मूल्य सजिल्द प्रतिका २)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस पुस्तकमें आचार्य कुन्दकुन्दके पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार नामके तीन ग्रन्थोंके मुख्य विषयोंका अपने ढङ्गसे एकत्र संग्रह और सङ्कलन किया गया है। इससे संक्षेप-प्रिय पाठकोंको विषय-विभागसे तीनों ग्रन्थोंका रसास्वादन एक साथ होजाता है। लेखकका यह प्रयत्न और परिश्रम प्रशंसनीय है। पुस्तकके उपोद्घातमें ग्रन्थकर्ता, उनके ग्रन्थों तथा उनकी गुरुपरम्पराका भी संक्षेपमें परिचय दिया है। पुस्तक अच्छी उपयोगी एवं संग्रहणीय है। छपाई-सफाई सब ठीक है।

१४. करलक्खण (सामुद्रिकशास्त्र)—संपादक प्रफुल्लकुमार मोदी एम० ए०, प्रो० किङ्ग एडवर्ड कॉलेज अमरावती। प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ संख्या सब मिलाकर ३८। मूल्य, सजिल्द प्रतिका १)

इस अज्ञात कर्तृक पुस्तकके नामसे ही उसके विषयका परिचय मिल जाता है। इसमें शारीरिक विज्ञानके अनुसार हाथकी रेखाओंकी आकृति, बनावट, रूप, रङ्ग, कोमलता, कठोरता, स्निग्धता और रूक्षता तथा सूक्ष्म-स्थूलतादिकी दृष्टिसे विभिन्न रेखाओंका विभिन्न फल बतलाया गया है। शरीर सम्बन्धी चिह्नों या रेखाओंके द्वारा मानवीय प्रवृत्तियोंके शुभाशुभ फलका निर्देश करना भारतीय सामुद्रिकग्रन्थोंकी प्राचीन मान्यता है। इस विषयपर भारतीय साहित्यमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना हुई है। प्राक्कथनद्वारा डाक्टर ए.एन.उपाध्ये एम.ए.ने इसपर संक्षेपतः प्रकाश डाला है।

वीरसेवामन्दिरमें भी एक अज्ञात कर्तृक 'करेहा-लक्खण' नामका ५९ गाथाप्रमाण छोटा-सा सामुद्रिक ग्रन्थ है, जो एक प्राचीन गुटकेपरसे उपलब्ध हुआ है। इन दोनों ग्रन्थोंका विषय परस्पर मिलता-जुलता है और कहीं-कहींपर गाथा तथा पदवाक्य भी मिलते हैं। परन्तु मङ्गलाचरण दोनोंका भिन्न-भिन्न है। दोनों ग्रंथोंको सामने रखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि उनपर एक दूसरेका प्रभाव स्पष्ट है। वे मङ्गल पद्य इस प्रकार हैं:—

पणमिय जिणममिअगुणं गणरायसिरोमणिं महावीरं।
वुच्छं पुरिसत्थीणं करलक्खणमिह समासेणं ॥१॥

—मुद्रित प्रति

वंदित्ता अरिहंते सिद्धे आयरिय सव्वसाहूय।
संखेवेण महत्थं कररेहालक्खणं वुच्छं ॥१॥

—लिखित प्रति

मुद्रित प्रतिमें मङ्गलाचरणके बाद निम्न गाथा दी हुई है:—

पावइ लाहालाहं सुहदुक्खं जीविअं च मरणं च।
रेहाहिं जीवलोए पुरिसोविजयं, जयं च तहा ॥२॥

परन्तु लिखित प्रतिमें इस स्थानपर निम्न दो गाथाएँ दी हुई हैं जिनमेंसे प्रथम गाथाका चतुर्थ चरण भिन्न है, शेष तीन चरण मिलते-जुलते हैं। किन्तु तीसरी गाथा मुद्रित प्रतिमें नहीं मिलती।

पावइ लाहाऽलाहं सुह-दुक्खं जीविय मरणं च।
रेहाए जीवलोए पुरिसो महिलाइ जाणिज्जइ ॥२॥
आउं पुत्तं च धणं कुलवंसं देह-संपत्ती।
पुव्वभव-संचियाणि य पुन्नाणि कहंति रेहाओ ॥३॥

इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि एक ग्रन्थपर दूसरेका प्रभाव अवश्य है।

१५. मदनपराजय—मूल लेखक, कवि नागदेव। अनुवादक-सम्पादक, पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य। प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर २४२। मू०, सजिल्द प्रतिका ८) रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ एक रूपक-काव्य है, जिसमें कामदेवके पराजयकी कथाका भावपूर्ण चित्रण किया गया है। कविने अपनी कल्पना-कलाकी चतुराईसे कथावस्तुकी घटनाको अपूर्व ढङ्गसे रखनेका प्रयत्न किया है और वह इसमें सफल भी हुआ है। प्रस्तुत रचना बड़ी ही सुन्दर एवं मनोमोहक है और पढ़नेमें अच्छी रुचिकर जान पड़ती है। सम्पादकद्वारा प्रस्तुत ग्रंथका मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद भी साथमें दिया हुआ है। ग्रन्थके आदिमें महत्वपूर्ण प्रस्तावनाद्वारा भारतीय कथा-साहित्यका तुलनात्मक विवेचन करके उसपर कितना ही प्रकाश डाला गया है। पं० राजकुमारजी जैन-समाजके एक उदीयमान विद्वान् और लेखक हैं। आशा है भविष्यमें आपके द्वारा जैन-साहित्य-सेवाका कितना ही कार्य सम्पन्न हो सकेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ पठनीय व संग्रहणीय है। —परमानन्द शास्त्री

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धांजलि

[यह श्रद्धाञ्जलि पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णीके मुरार (ग्वालियर)से प्रस्थान करनेके अवसरपर पढ़ी गई]

(रचयिता—श्रीब्रजलाल उर्फ भैयालाल जैन "विशारद" मुरार)

हे पूज्यवर्य गुरुवर तुम हो, विद्या निधान मानव महान !

शचि शान्ति-सुधा वर्षण करके, जन-मनमें प्रेम बढ़ाया है ।
मानव-कर्तव्य स्वयं करके, युगधर्म हमें दर्शाया है ॥
देकर ज्ञान-दान, जगका तुम करने चले आत्म-कल्याण ॥ हे पूज्य०

अज्ञान मिटा करके तुमने लघु-जनको विद्या दान दिया ।
निजवरद-हस्त देकर हमको आत्मोन्नतिका सद्ज्ञान दिया ॥
तुम धर्मस्नेह लेकर आये करने मानवको दीप्तिमान ॥ हे पूज्य०

निज जीवन कर अर्पण तुमने मानव-संस्कृति-विस्तार किया ।
"स्याद्वाद" "सत्तर्क भवन" से जैन सिद्धान्त प्रसार किया ॥
तुम ज्ञान-कोष लेकर आये देने जीवोंको अमर दान ॥ हे पूज्य०

उपहार नहीं ऐसा कुछ है, उत्साह बढ़ाऊँ मैं जिससे ।
श्रद्धाञ्जलि भक्तीकी "भैया" ले मात्र उपस्थित हूँ इससे ॥
गुरुदेव इसे स्वीकार करो कर अपराधोंका क्षमा-दान ॥ हे पूज्य०

चिरजीवो तुम युग-युग वर्णी शुभ यही भावना है प्रतिक्षण ।
गुरुवर तेरे उपकारोंसे है ऋणी हुआ जगका कण-कण ॥
अभिनन्दन करने हम आये कर भावोंकी माला प्रदान ॥ हे पूज्य०

छैह मास हुए जबसे हमने प्रिय वाणीका आस्वाद लिया ॥
दिल्ली प्रस्थान दिवस सुनकर, है हमें मोहने घेर लिया ॥
हृद्गत सुभक्ति नयनोंमें अश्रु, हे देव ! सफल हो तव प्रस्थान ॥ हे पूज्य०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

जैन-साहित्यपर विहारके शिक्षामन्त्री

जबसे मैंने विहार प्रान्तमें प्रवेश किया है तभीसे मनमें एक बात बहुत ही खटक रही है कि इस प्रान्तका सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास, क्योंन तैयार कराया जाय, क्योंकि नालन्दा, राजगृह, पावापुरी, वैशाली, गया आदि दर्जनों प्राचीन ऐतिहासिक स्थान ऐसे हैं; जिनका मूल्य न केवल विहार प्रान्तीय दृष्टिसे ही है अपितु शिक्षा और संस्कृतिका जहाँ तक सम्बन्ध है, उनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी अधिक है। मुझे कुछेक खण्डहरोंमें घूमनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसपरसे मैं कह सकता हूँ कि वहाँ विचारोंका प्रवाह इतने जोरोंसे बहता है, कि दो-दो शार्ट हैण्ड रखें तो भी उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। उनके कण-कणमें मानों विहारकी सांस्कृतिक आत्मा बोल रही है जहाँपर विहार और विभिन्न प्रान्तीय या देशीय विद्वानोंने बैठकर ज्ञान-विज्ञानकी समस्त शाखाओंका गम्भीर, बहुमुखी अध्ययन किया, जहाँके पण्डितोंने विदेशोंमें आर्यसंस्कृतिकी विजय-वैजयन्ती फहराई। परन्तु आज अतिखेदके साथ सूचित करना पड़ रहा है कि उपर्युक्त ऐतिहासिक विशाल-साधन सामग्रीकी उपेक्षा; जितना बाहर वाले नहीं करते उससे कहीं अधिक विहारके विद्वानों द्वारा हो रही है। मैं यहाँ देखता हूँ कि किसीको पुरातत्वके साधनोंके प्रति हमदर्दी ही नहीं है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यह विषय इतना सूखा है कि कहानी-कविताकी उपासना करने वाला वर्ग इनको नहीं समझ सकता। वर्षोंकी ज्ञान उपासना करनेके बाद ही उनकी सार्वभौमिक महत्ताको आत्मसात् किया जासकता है। यह उपेक्षा अग्रिम निर्माणमें बड़ी घातक सिद्ध होगी।

गत दिसम्बर मासमें मैं इस सम्बन्धमें विहार सरकारके अर्थमन्त्री डाक्टर अनुग्रहनारायणसिंहसे मिला था, उनके सम्मुख मैंने अपनी एक योजना रखी, जिसमें बताया गया था कि विहार प्रान्तके इतिहास, पुरातत्वकी तमाम शाखा, जैन, साहित्य, शिलालिपि, टेराकोटा, मुद्रा, प्रतिमाएँ आदि जितनी भी मौलिक साधन-सामग्री समुपलब्ध हो रही है उनका विस्तृत वैज्ञानिक रूपसे गम्भीर अध्ययन किया जाय, तदनन्तर संक्षिप्त रूपमें उपर्युक्त साधनोंकी उपयोगिता, महत्ता और उनके जन-जीवनसे सम्बन्ध ज्ञापक साहित्य तैयार करवाकर एक ग्रन्थ संग्रहीत कर प्रकाशितकर जनताके सम्मुख उपस्थित किया जाय, यह काम कुछ श्रम और अर्थसाध्य तो अवश्य ही है पर सरकारका सर्वप्रथम कार्य भी यही होना चाहिये। यह विहारका सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास नहीं होगा पर आगामी लिखे जाने वाले इतिहासकी पूर्व भूमिकाका एक मार्गदर्शक अङ्ग होगा, हमारा कार्य साधनोंका संग्रह होना चाहिये, लेखन कार्य अगली पीढ़ी करेगी जो मानसिक स्वातन्त्र्यके युगमें शिक्षा पाकर अपनी दृष्टिसे अपने पूर्वजोंके कृत्योंकी समीक्षा करनेकी योग्यता रखती हो।

आज हम जो कुछ भी लिखते-सोचते हैं केवल अँग्रेजोंद्वारा प्रस्तुत किये तथ्योंके आधारपर ही। जो उनकी अपनी एक दृष्टिसे प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु अबतो समयने बहुत परिवर्तन ला दिया है। हमारे प्रान्त या सारे देशमें ऐसे कितने प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान हैं; जो खँडहरोंकी खाक छानकर ऐतिहासिक स्थानोंमें परिभ्रमणकर, जंगलोंमें यातना सहकर, वहाँकी पुरातन सामग्रीको अपनी दृष्टिसे देखकर लिखनेकी योग्यता रखते हैं, जिनमें अपनी स्वकीयता हो। किसी भी वस्तुके वास्तविक मर्मको बिना समझे उसे आत्मसात् करना असम्भव है और बिना आत्मसात् किये कुछ लिखना-पढ़ना कोई अर्थ नहीं रखता, जिनमें अनुभूति न हो। सच कहना यदि उलटा न माना जाय तो मैं जोरदार शब्दोंमें कहूँगा कि अभी तो विहारके विद्वानोंने विहारकी संस्कृति और इतिहासके विभिन्नतम साधनोंका समुचित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन नहीं किया प्रत्युत उस ओर सर्वथा पक्षपात-पूर्ण या उपेक्षित मनोवृत्तिसे काम लिया है। यही कारण है कि इतनी विशाल ऐतिहासिक सामग्रीके रहते हुए भी योग्य विद्वानके अभावमें आज वह सामग्री विधुरत्वका अनुभवकर रही है।

ता० ७–१०–४८ को विहारके कविसम्राट् श्रीयुत् रामधारीसिंह 'दिनकर'के साथ मैंने अपनी हार्दिक व्यथा विहार सरकारके शिक्षामन्त्री श्रीयुत् बद्रीनाथ वर्माके सन्मुख रखी। मुझे वहाँ मालूम हुआ कि वे भी इसी रोगसे पीड़ित हैं, वे स्वयं चाहते हैं कि हम अपनी दृष्टिसे ही अपने प्रान्तका सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास तैयार करवावें। आपने अपनी युद्धोतर योजनामें संशोधन सम्बन्धी भी एक योजना रखी है जिसपर भारत सरकारकी मंजूरी भी मिल गयी है, परन्तु उसे मूर्तरूप मिलनेमें पर्याप्त समयकी अपेक्षा है। आदर्श की सृष्टि करना उतना कठिन नहीं जितना उनको मूर्तरूप देना कठिन है। प्रसंगवश मैंने विहारकी संस्कृतिके बीज जैन-साहित्यमें पाये जानेकी चर्चाकी तो उनका हृदय भर आया। मुखाकृति खिल उठी। इस समय आपने सद्भावनाओंसे उत्प्रेरित होकर जो शब्द जैन-साहित्यपर कहे उन्हें मैं सधन्यवाद उधृद्त किये देता हूं:—

"जैनसाहित्य बड़ा विशाल विविध विषयोंसे समृद्ध है। अभी तक हमारे विहार प्रान्तके विद्वानोंने इस महत्वपूर्ण साहित्यपर समुचित ध्यान नहीं दिया है। विहार प्रान्तके इतिहास और संस्कृतिकी अधिकतर मौलिक सामग्री जैनसाहित्य-में ही सुरक्षित है। विशेषतः श्रमण भगवान महावीर कालीन हमारे प्रान्तका सांस्कृतिक चित्र जैसा जैनोंने अपने साहित्यमें अङ्कित कर रखा है वैसा अजैन-साहित्यमें हर्गिज नहीं पाया जाता। साहित्य-निर्माण और संरक्षणमें जैनोंने बड़ी उदा-रतासे काम लिया है। यदि हम जैनसाहित्यका केवल सांस्कृतिक दृष्टिसे ही अध्ययन करें तो बहुतसे ऐसे तत्व प्रकाशमें आवेंगे जिनका ज्ञान हमें आजतक न था। मैं तो स्पष्ट कहूँगा कि विहारका इतिहास भारतका इतिहास है। विहारका इतिहास बहुत कुछ अंशोंमें जैनसाहित्यके अध्ययनपर निर्भर है। अतः बिना जैनसाहित्यके अन्वेषणके हम अपने प्रान्तका इतिहास लिखनेकी कल्पना तक नहीं कर सकते।

हमारे प्रान्तकी प्राचीनतम भाषाका स्वरूप भी जैनोंने अपने साहित्यमें सुरक्षित रखा है। अतः हम उन्हें कैसे भूल सकते हैं, बल्कि मैं तो कहूँगा कि हमारा प्रान्त उन जैन विद्वानोंका सदैव ऋणी रहेगा जिन्होंने हमारे सांस्कृतिक तत्व सुरक्षित रखनेमें हमारी बड़ी मदद की। मैं यह चाहता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि आप स्वयं जैनसाहित्यमें विहार, नामक एक ग्रन्थ तैयार कर दें तो बड़ा अच्छा हो। हमारी सरकार इस कार्यमें हर तरहसे मदद करनेको तैयार है। सरकार ही इसे प्रकाशित भी करेगी। हमारी तो वर्षोंकी मनोकामना है कि प्रत्येक धर्म और साहित्यकी दृष्टियोंमें हमारे प्रान्तका स्थान क्या है? हम जाने और वर्तमानरूप देनेमें आवश्यक सहायता करें। यदि आप अभी लेखन कार्य चालू करें तो ४००) रुपये तक मासिक जो कुछ भी क्लर्क या सहायक विद्वान्का खर्च होगा, हम देंगे।"

उपर्युक्त शब्द बद्री बाबूके हृदयके शब्द हैं। इनमें पॉलिश नहीं है। उनके शब्दोंसे मेरा उत्साह और भी आगे बढ़ गया। मैंने उपर्युक्त शब्द इस लिए उद्धृत किये हैं कि हमारे समाजके विद्वान् जरा ठंडे दिमाग़से सोचें कि हमारे साहित्यमें कितनी महान् निधियाँ भरी पड़ी हैं जिनका हमें ज्ञान तक नहीं और अजैन लोग जैनसाहित्यको केवल विशुद्ध सांस्कृतिक दृष्टिसे देखते हैं तो उन्हें बड़ा उपादेय प्रतीत होता है। वे मुग्ध हो जाते हैं।

१०-१०-१९४८ मुनि कान्तिसागर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबन्ध**—(महधवल सिद्धान्त-शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित मूल्य १२)।

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक-शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक--प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। मूल्य १)।

३. **मदनपराजय**— कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित। जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक। सम्पादक और अनुवादक-पं० राजकुमारजी सा०। मू० ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित। मुखपृष्ठपर महावीरस्वामीका तिरङ्गा चित्र। मूल्य ४।-)

५. **हिन्दी जैन-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास तथा परिचय। मूल्य २॥)।

६. **आधुनिक जैन-कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। मूल्य ३॥)।

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जयका पुण्यचरित्र (पौराणिक रोमाँस) मू० ४॥)

८. **दो हजार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियाँ) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण देने योग्य। मूल्य ३)।

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी-साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध। मूल्य २)।

१०. **पाश्चात्यतर्कशास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लॉजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक। लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एम० ए०, पालि-अध्यापक, हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी। पृष्ठ ३८४। मूल्य ४॥)।

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—मूल्य २)।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थ-सूची**—(हिन्दी) मूडबिद्रीके जैनमठ, जैन-भवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य ग्रन्थ-भण्डार कारकल और अलिपूरके अलभ्य ताडपत्रीय ग्रन्थोंके सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्र-भण्डारमें विराजमान करने योग्य। मूल्य १३)।

वीरसेवामन्दिरके सब प्रकाशन भी यहाँपर मिलते हैं

प्रचारार्थ पुस्तक मँगाने वालोंको विशेष सुविधाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. A-731

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म]

प्राचीन और वर्त्तमान कवियोंमें सर्वप्रधान

लोक-प्रिय ३१ कलाकारोंके मर्मस्पर्शी पद्योंका सङ्कलन
और उर्दू-कविताकी गति-विधिका आलोचनात्मक परिचय

प्रस्तावना-लेखक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति महापंडित राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—

"शेरोशायरी"के छ सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया। यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दीको ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालोंके लिये इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू "छन्द और कविता"का चतुर्मुखीन परिचय कराया। गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

कर्मयोगीके सम्पादक श्रीसहगल लिखते हैं—

"वर्षोंकी छानबीनके बाद जो दुर्लभ सामग्री श्रीगोयलीयजी भेंट कर रहे हैं इसका जवाब हिन्दी-संसारमें चिराग़ लेकर ढूँढनेसे भी न मिलेगा, यह हमारा दावा है।"

सुरुचिपूर्ण मुद्रण, मनमोहक कपड़ेकी जिल्द
पृष्ठ संख्या ६४० — मूल्य केवल आठ रुपए

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, बनारस

प्रकाशक—पं० परमानन्द जैन शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशीके लिये आशाराम खत्री द्वारा रॉयल प्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org